मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 15 ● वर्ष 2 ● अंक 8 ● अक्टूबर 2012 ● पाँच रुपये ● सोलह पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

मारुति सुज़ुकी मज़दूर आन्दोलन की सफलता का एक ही रास्ता

आन्दोलन को कारख़ाने की चौहद्दी से बाहर निकालो!

आन्दोलन को इलाक़ाई मज़दूर उभार का रूप दो!

● सम्पादकीय अग्रलेख

गुड़गाँव में 7-8 नवम्बर को भूख हड़ताल और रैली के दौरान मारुति सुज़ुकी के मज़दूर

18 जुलाई की घटना और पूँजीपति वर्ग की सरकारी मशीनरी द्वारा क़ायम "आतंक का राज्य"

21 अगस्त को जब मारुति सुज़ुकी प्रबन्धन ने मानेसर संयंत्र को फिर से खोला तो मारुति सुज़ुकी के मज़दूर आन्दोलन के एक नये चरण की शुरुआत हुई। 18 जुलाई को प्रबन्धन की साज़िश के नतीजे के तौर पर हुई दुर्भाग्यपूर्ण घटना के बाद से, जिसमें मारुति के एक मैनेजर की मौत भी हो गयी थी, मानेसर संयंत्र को कम्पनी ने बन्द कर दिया था। इस घटना के बाद पूरे देश में मीडिया और प्रशासन के ज़रिये ऐसा माहौल बनाया गया मानो मज़दूर अपराधी हों। प्रबन्धन और प्रशासन ने हर सम्भव पैंतरे अपनाये ताकि मज़दूरों को अपराधी सिद्ध किया जा सके। मज़दूर शुरू से यह माँग कर रहे थे कि 18 जुलाई की घटना की निष्पक्ष व उच्चस्तरीय जाँच करायी जाये। लेकिन बिना किसी जाँच के मज़दूरों के ख़िलाफ़ हरियाणा पुलिस ने धरपकड़ शुरू कर दी। इस धरपकड़ अभियान के परिणामस्वरूप अभी तक 149 मज़दूर सलाखों के पीछे हैं, जब कि उन पर कोई जुर्म साबित नहीं हुआ है। जिन इलाक़ों में मज़दूर रहते थे उनमें पुलिस ने आतंक का माहौल क़ायम कर दिया। इसके बाद जब 21 सितम्बर को मारुति सुज़ुकी ने संयंत्र को दोबारा खोला, तो 546 स्थायी मज़दूरों को नौकरी से निकाल दिया गया। कम्पनी का यह कदम पूरी तरह ग़ैर-कानूनी और अन्यायपूर्ण था क्योंकि मज़दूरों पर अभी कोई दोष सिद्ध नहीं हुआ था। लेकिन एकतरफ़ा तरीके से इन मज़दूरों को काम से बाहर कर दिया गया। इनमें से क़रीब 146 मज़दूर जेल में हैं। न्यायपालिका ने भी पूरी तरह से पूँजी का पक्ष लेते हुए मज़दूर आन्दोलन के नेताओं को पुलिस हिरासत में भेज दिया। पुलिस हिरासत का मतलब एक बच्चा भी जानता है। इसका साफ़ अर्थ होता है बर्बर यातनाएँ देकर जुर्म क़ुबूल करवाने की पूरी छूट! एक निष्पक्ष जनवादी अधिकार संगठन की जाँच ने साफ़ तौर पर यह सच उजागर कर दिया कि पुलिस हिरासत में भेजे गये मज़दूरों को पुलिस ने असहनीय यातनाएँ दी हैं। लेकिन इसके बावजूद पुलिस पर कोई कार्रवाई नहीं की गयी। वास्तव में, मज़दूरों के दमन की इस पूरी प्रक्रिया में कम्पनी प्रबन्धन, हरियाणा सरकार, केन्द्र सरकार और देश की न्यायपालिका साथ हैं और यह पूरा काम 18 जुलाई की घटना से ही सोची-समझी योजना के तौर पर किया जा रहा है। और ऐसा क्यों किया जा रहा है? ऐसा इसलिए किया जा रहा है क्योंकि मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों ने अपने जायज़ क़ानूनी हक़ों को पूरा करने की माँग उठायी थी।

पूँजीपति वर्ग का "देश और राष्ट्र" और हमारा देश

जब 21 सितम्बर को मानेसर संयंत्र फिर से खुला तो सभी राष्ट्रीय अख़बारों में मारुति सुज़ुकी कम्पनी ने पूरे-पूरे पेज का विज्ञापन दिया। इस विज्ञापन में कम्पनी ने कहा कि 'मारुति सुज़ुकी एक परिवार है' और हर परिवार की तरह इस परिवार को भी कुछ दिक़्क़तों और चुनौतियों का सामना करना पड़ा है, लेकिन अब संयंत्र फिर से शुरू हो रहा है और अब कम्पनी ने उन चुनौतियों और दिक़्क़तों पर विजय पा ली है! जाहिर है, इस 'मारुति सुज़ुकी परिवार' में मज़दूरों का कोई स्थान नहीं है। इसमें कम्पनी के मालिकान, प्रबन्धन, कम्पनी के शेयरहोल्डर और कारें ख़रीदने वाला देश का खाता-पीता मध्यवर्ग शामिल है। मज़दूरों का स्थान तो गुलामों का है जिन्हें मुँह बन्द करके चुपचाप खटते रहना चाहिए! कम्पनी और सरकार ने कहा कि मज़दूरों द्वारा "अशान्ति फैलाये जाने" (यानी, अपने क़ानूनी और जायज़ हक़ माँगने!) के कारण देश में निवेश का माहौल ख़राब हो रहा है! मीडिया ने जनता को यक़ीन दिलाने का प्रयास किया कि मज़दूर आन्दोलन "देश और राष्ट्र के हितों और विकास" का दुश्मन है! यहाँ पर भी साफ़ जाहिर है कि सरकार, पूँजीवादी मीडिया और कम्पनी के "देश और राष्ट्र" में मज़दूरों का स्थान क्या है! उनके "देश और राष्ट्र" में मज़दूरों का स्थान है मज़दूरी पाने वाले गुलामों का! वे जब तक ज़ुबान पर ताला लगाये गुलामों की तरह इस "देश और राष्ट्र" (यानी, पूँजीपति वर्ग और उच्च मध्य वर्ग) के लिए मुनाफ़ा पैदा करते रहें, ऐशो-आराम के सामान बनाते रहें, तब तक वे भले हैं! लेकिन जैसे ही मज़दूर अपने क़ानूनी और जायज़ हक़ों (जैसे यूनियन बनाने का हक़, न्यूनतम मज़दूरी का हक़, काम की जगह पर जायज़ सुविधाओं का हक़, डबल रेट से ओवरटाइम का हक़, और ई.एस.

(पेज 6 पर जारी)

आने वाले चुनाव और ज़ोर पकड़ती साम्प्रदायिक लहर 5
कैसा है यह लोकतंत्र और यह संविधान किसकी सेवा करता है 11
स्त्री मज़दूरों और उनकी माँगों के प्रति पुरुष मज़दूरों का नज़रिया 12
भ्रष्टाचार का राजनीतिक अर्थशास्त्र 16

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

बस फैक्ट्री ही दिखाई पड़ती है

मैं दिल्ली के बादली इण्डस्ट्रियल एरिया के पास राजा विहार बस्ती में रहता हूँ। इसके पास से पंजाब जाने वाली रेल लाइन गुज़रती है। इस पर गाड़ियों का ताँता लगा रहता है। एक दिन सुबह ड्यूटी जाते समय मैंने देखा कि पटरी के किनारे ख़ून गिरा है। काफ़ी भीड़ थी। पता लगा कि एक मज़दूर की ट्रेन की वजह से दुर्घटना हो गयी। मज़दूर का शरीर एम्बुलेंस में पड़ा था। पुलिस वाले खाना-पूर्ति के लिए जाँच-पड़ताल कर रहे थे। मज़दूर का सिर कान के ऊपर से फट चुका था। काफ़ी ख़ून निकल रहा था। मज़दूर बेहोश पड़ा था। लोगों ने बताया कि ड्यूटी जाने की देर हो रही थी। पटरी पार करते समय राजधानी एक्सप्रेस से बचने के लिए जल्दी में भागा। जाकर खम्भे से सिर टकरा गया। मज़दूर वहीं गिर पड़ा। पुलिस एम्बुलेंस लेकर आयी, मज़दूर को लिटा दिया। मगर अस्पताल आधे घण्टे बाद ले गयी। तब तक वह फटे हुए सिर के साथ ऐसे ही बेहोश पड़ा रहा। अगर कोई पैसे वाला होता तो उसकी इतनी दुर्दशा कभी न होती। आज मज़दूर दो वक़्त की रोटी में इतना चिन्तित है कि उसे राह चलते हुए भी बस कम्पनी ही दिखायी पड़ती है कि कहीं देर न हो जाये और पैसे न कट जायें। और आये दिन मज़दूर यूँ ही सड़क दुर्घटना व ट्रेन दुर्घटना का शिकार होते रहते हैं।

– शिवशरण, बादली

अनजान बचपन

सुबह ड्यूटी जा रहा था तो एक लड़का मेरे साथ-साथ चल रहा था। मुझे उसने देखा, मैंने उसे देखा। लड़के की उम्र करीब 12 साल थी। मैंने पूछा कहाँ जा रहे हो। उसने कहा ड्यूटी। कहाँ काम करते हो? लिबासपुर! क्या काम है? जूता फैक्टरी! कितनी तनख्वाह मिलती है? आठ घण्टे के 3500 रुपये। मैंने पूछा, आठ घण्टे के 3500 रुपये? बोला हाँ। मैंने पूछा सुबह कितने बजे जाते हो, बोला 9 बजे। मैंने कहा शाम कितने बजे आते हो, बोला 9 बजे। मैंने कहा तो 12 घण्टे हो गये। कहा नहीं... आठ घण्टे के 3500 रुपये।

मैंने कहा ड्यूटी 9 से 9 की है? – हाँ। महीने में 30 दिन ? – हाँ

कुल तनख़्वाह – 3500 रुपये? – नहीं, 4500 मिलते हैं।

मैंने पूछा 9 से 9 काम करते हो। उसके बाद रात में भी रुकते हो? कहा हाँ, एक हफ्ते में 4 रात काम करना पड़ता है। इसलिए मुझे अभी भी नींद आ रही है। मैंने पूछा, महीने में 15-16 नाइट? कहा, हाँ। मैंने कहा, तब तो तुम्हें 8 घण्टे की तनख्वाह 15-16 सौ रुपये ही देता है। तो बोला हम अनपढ़ हैं। इसलिए हमने मालिक से कह दिया, मेरी तनख़्वाह मम्मी के हाथ में दे दिया करें।

– रामाधार, बादली

सभी बिगुल और आह्वान पुस्तिकाएँ यहाँ से प्राप्त करें:
जनचेतना
डी-68, निरालानगर
लखनऊ-226020
फ़ोन: 0522-2786782

एक बेहद प्रासंगिक और विचारोत्तेजक पुस्तिका

भ्रष्टाचार और उसके समाधान का सवाल

सोचने के लिए कुछ मुद्दे

आह्वान पुस्तिका-6

मूल्य: 25 रुपये

मज़दूर साथियो, 'आपस की बात' आपका पन्ना है। इसमें छापने के लिए अपने कारख़ाने, काम, बस्ती की समस्याओं व स्थितियों के बारे में, अपनी सोच के बारे में लिखकर हमें भेजिये। आपको 'बिगुल' कैसा लगता है, इसमें क्या अच्छा लगता है और क्या कमियाँ नज़र आती हैं, इसे और बेहतर कैसे बनाया जा सकता है – इन बातों पर भी आपकी राय जानने से हमें मदद मिलेगी। आप नीचे दिये पते पर हमें पत्र लिख सकते हैं या बिगुल कार्यकर्ता साथी को ज़ुबानी भी बता सकते हैं।– सम्पादक मण्डल

मज़दूर बिगुल की नयी वेबसाइट
आप यहाँ देख सकते हैं:
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की महत्वपूर्ण सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। हम बिगुल के प्रवेशांक से लेकर अब तक के सभी अंक वेबसाइट पर उपलब्ध कराने के लिए काम कर रहे हैं।

आप इस वेबसाइट पर जाकर भी बिगुल की सामग्री पर अपने विचार व्यक्त कर सकते हैं या कोई रिपोर्ट आदि हमें भेज सकते हैं।

हक़ और इंसाफ़ के लिए लुधियाना के मज़दूरों के आगे बढ़ते क़दम

(पेज 5 से आगे)

पंचायत में हुई चर्चा के बाद सहमति बन गयी। 25 अगस्त को एक माँगपत्रक तैयार करके सभी फैक्ट्रियों के मज़दूरों ने मालिकों तक पहुँचा दिया। यूनियन ने साफ़ कह दिया कि जो मालिक माँगों के बारे में अपने मज़दूरों से समझौता कर लेगा उसकी फैक्टरी चलती रहेगी, जो भी मालिक मज़दूरों की जायज़ माँग नहीं मानेगा उसके प्रति सभी मज़दूर मिलकर फैसला लेंगे। कुछ मालिकों ने अपने मज़दूरों से समझौता कर लिया, जिसके अनुसार पहले की 25 प्रतिशत और अभी की 13 प्रतिशत वृद्धि यानी कुल 38 प्रतिशत वेतन बढ़ोत्तरी, 8.33 प्रतिशत बोनस और सभी मज़दूरों का ई.एस.आई. कार्ड बनवाने की बात पर लिखित समझौता करने पर उन फैक्ट्रियों में काम चलता रहा। लेकिन जिन मालिकों ने इन माँगों पर ध्यान नहीं दिया उनके बारे में 16 सितम्बर को यूनियन की साप्ताहिक सभा में फैसला लिया गया कि उन फैक्ट्रियों में मज़दूर 5 बजे के बाद ओवरटाइम लगाना बन्द कर रोज़ाना मीटिंग किया करेंगे। अभी भी काफी मालिक कुछ नहीं देने की ज़िद पर अड़े हैं और मीटिंग रोज़ाना जारी है।

ई.एस.आई. दफ़्तर का घेराव

13 सितम्बर को टेक्सटाइल मज़दूर यूनियन के नेतृत्व में लगभग 1500 मज़दूरों ने 2 किलोमीटर लम्बा मार्च किया और ई.एस.आई. कार्यालय का घेराव किया क्योंकि पिछले वर्ष जिन फैक्ट्रियों के मज़दूरों की सूचियाँ विभाग को ई.एस.आई. की सुविधा लागू करवाने के लिए दी गयी थी उन पर कोई ठोस कार्रवाई नहीं हुई थी। बहुत कम मज़दूरों को यह सहूलियत मिली थी।

ई.एस.आई. के उपनिदेशक द्वारा 15 दिन के भीतर सभी मालिकों को नोटिस भिजवाकर सभी मज़दूरों के कार्ड बनाने और अवहेलना करने वाले मालिकों के ख़िलाफ़ ई.एस.आई. एक्ट की धारा 85(जी) के तहत क़ानूनी कार्रवाई करने का आश्वासन देने के बाद ही मज़दूरों ने धरना हटाया। इस समय मेहवान क्षेत्र की 17 फैक्ट्रियों के मज़दूरों की सूची भी विभाग को सौंपी गयी। इसके साथ ही अब तक 187 फैक्ट्रियों की सूचियाँ ई.एस.आई. विभाग को भेजी जा चुकी हैं। इस धरने का असर यह हुआ कि अगले ही दिन सभी अख़बारों में नोटिस निकालकर सभी मालिकों को मज़दूरों के कार्ड बनाने के लिए कहा गया और ई.एस.आई. की टीमें फैक्ट्रियों में छापे मार रही हैं। यूनियन ने फ़ैसला किया कि आने वाले दिनों में श्रम क़ानूनों से सम्बन्धित सरकारी दफ़्तरों का घेराव किया जायेगा।

● राजविन्दर

मज़दूर बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाज़ों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल 'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध है :

- डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020 फोन : 0522-2786782
- जनचेतना स्टाल, काफ़ी हाउस बिल्डिंग, हज़रतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे)
- 114, जनता मार्केट, रेलवे स्टेशन रोड, गोरखपुर-273001
- जनचेतना, दिल्ली – फ़ोन : 09910462009
- जनचेतना, लुधियाना – फोन : 09815587807

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।"
– लेनिन

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता। बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये। सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन : 0522-2335237
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigul@rediffmail.com
मूल्य	: एक प्रति – रु. 5/- वार्षिक – रु. 70/- (डाक खर्च सहित)

बेइज़्ज़ती में किसी तरह जीते रहने से अच्छा है इज़्ज़त और हक़ के साथ जीने के लिए लड़ते हुए मर जाना

जिन लोगों ने आजकल के औद्योगिक इलाक़ों को नज़दीक से नहीं देखा है वे सोचते होंगे कि आज के आधुनिक युग में शोषण भी आधुनिक तरीक़े से, बारीक़ी से होता होगा। किसी अख़बार में मैंने एक प्रगतिशील बुद्धिजीवी महोदय का लेख पढ़ा था जिसमें उन्होंने लिखा था कि अब पहले की तरह मज़दूरों का नंगा, बर्बर शोषण-उत्पीड़न नहीं होता। ऐसे लोगों को ज़्यादा दूर नहीं, दिल्ली के किसी भी औद्योगिक इलाक़े में जाकर देखना चाहिए जहाँ 95 प्रतिशत मज़दूर असंगठित हैं और काम की परिस्थितियाँ सौ साल पहले के कारख़ानों जैसी हैं। मज़दूर आन्दोलन के बेअसर होने के कारण ज़ालिम मालिकों के सामने मज़दूर इतने कमज़ोर पड़ गये हैं कि उन्हें रोज़-रोज़ अपमान का घूँट पीकर काम करना पड़ता है। मज़दूरों की बहुत बड़ी आबादी छोटे-छोटे कारख़ानों में काम कर रही है और ये छोटे मालिक पुराने ज़माने के ज़मींदारों की तरह मज़दूरों के साथ गाली-गलौच और मारपीट तक करते हैं।

दिल्ली के लिबासपुर इलाक़े में ऐसी ही एक फैक्ट्री है जिसके मालिक के अमानवीय आचरण के चलते फैक्ट्री इलाक़े की आसपास की गलियों के बच्चों तक को इसकी जानकारी है। रबर के गास्केट बनाने वाली इस फैक्ट्री में 30 मज़दूर काम करते हैं जिनमें से 13 महिलाएँ हैं।

इसके मालिक चोपड़ा के व्यवहार का अन्दाज़ा इसकी बदतमीज़ी भरी बातों से चल जाता है। कुछ नमूने आप ख़ुद देख लीजिए –

एक दुबली-पतली महिला हेल्पर से, 'ऐ पिंकी खाके नहीं आयी क्या? बाऊ को तेरे जैसे आउटपीस नहीं चाहिए!' एक महिला हेल्पर से चिल्लाते हुए, 'ऐ रेनू तेरे भी हाथों में जान नहीं है। काम और तेज़ कर! बिहारी साले चावल खाते हैं। हड्डी में तेल कहाँ से आयेगा।' एक महिला हेल्पर को गाली देकर, 'ऐ भगवान देवी, उठ वहाँ से, नेता बन गयी है, चल माल बाँध।' छोटी-सी बात पर कान पकड़कर उमेठना, चोटी पकड़कर झकझोरना, गर्दन दबा देना, गाल पकड़कर नोचना इसके लिए आम बात है। करीब पाँच महिलाएँ तो इसकी माँ की उम्र की होंगी। मगर इसका बरताव सबके लिए एक समान रहता है।

एक मज़दूर से चिल्लाते हुए बोला – 'ऐ मास्टर, समझ में नहीं आता क्या तेरे। साले बिहारी सब ऐसे ही होते हैं।' उसको पकड़कर उसकी छाती दबाते हुए बोला, 'तू लिख यहाँ तू बिहारी है!' मज़दूर भारत के किसी भी क्षेत्र का हो, मगर ये सबको बिहारी ही कहता है। बात-बात पर माँ-बहन की गालियाँ देता रहता है। ये अकेला 30 मज़दूरों को अपनी उँगली पर नचाता है और सब मज़दूर चुपचाप एक पैर पर नाचते रहते हैं।

इसी उठा-पटक में पिछले महीने मालिक का ख़ास आदमी (मज़दूरों की भाषा में 'चमचा') राजू पावर प्रेस चला रहा था और चोपड़ा सुबह से आसमान सिर पर उठाये हुए था। सभी मज़दूर बड़े आतंकित थे। राजू प्रेस पर हाथ रखे था। हड़बड़ी में पैर दबा दिया और उसके सीधे हाथ का अँगूठा नाख़ून सहित पिस गया। कानोकान सभी मज़दूरों को ख़बर पहुँच गयी। मगर चोपड़ा के आतंक की वजह से किसी मज़दूर की हिम्मत नहीं पड़ी कि काम छोड़कर अपने भाई का हालचाल पूछ लें।

इस तरह से डर-डर कर, रोज़-रोज़ मरते हुए मज़दूर कबतक जीते रहेंगे? इसी डर का नतीजा है कि कारख़ानेदार से लेकर मकानमालिक और दुकानदार तक हमारे साथ इस तरह बर्ताव करते हैं जैसे कि हम इंसान से नीचे की किसी नस्ल के जीव हों। इसी डर के कारण हम मुसीबत में भी अपने मज़दूर भाई-बहनों का साथ नहीं देते और अकेले-अकेले घुटते रहते हैं। इस तरह बेइज़्ज़त होकर किसी तरह ज़िन्दा रहने से तो अच्छा है कि इज़्ज़त और हक़ के साथ जीने के लिए लड़ते हुए मर जायें।

● एक मज़दूर, लिबासपुर, दिल्ली

पॉलिथीन कारख़ानों के मज़दूरों की हालत

दिल्ली के बादली, समयपुर, लिबासपुर आदि इलाक़ों में प्लास्टिक की पन्नी बनाने के अनेक छोटे-छोटे कारख़ाने हैं। बड़े उद्योगों में पैकिंग की ज़रूरतों से लेकर घरों तक में पॉलिथीन की खपत जिस तरह बढ़ रही है उसके चलते पन्नी की माँग भी बढ़ती जा रही है। लेकिन बड़े सप्लायरों ने इसके उत्पादन का काम छोटे-छोटे कारख़ानों में बाँट रखा है। अगर केवल इसी इलाक़े में चलने वाली सारी मशीनों को जोड़ा जाये तो सैकड़ों मज़दूर इन पर काम करते हैं। अगर ये मशीनें किसी बड़े कारख़ाने में चलतीं तो बड़ी संख्या में मज़दूर एकजुट होकर अपनी हालत सुधारने की आवाज़ उठा सकते थे। लेकिन छोटी-छोटी इकाइयों में बिखरे होने के कारण अपने कारख़ाने में वे लड़ पाने की हालत में ही नहीं होते और बहुत बुरी स्थितियों में काम करने के लिए मजबूर होते हैं।

❑ इन कारख़ानों में पन्नी बनाने की पूरी प्रक्रिया मज़दूर के लिए बहुत तकलीफ़देह होती है।
❑ जनवरी की कड़ाके की ठण्ड के समय भी इन फैक्ट्रियों का तापमान इतना रहता है कि लोग कच्छा-बनियान पहनकर काम कर सकते हैं।

इन कारख़ानों में पन्नी बनाने की पूरी प्रक्रिया मज़दूर के लिए बहुत तकलीफ़देह होती है। पहले प्लास्टिक का दाना गर्म करके माड़े हुए आटे की तरह बनाया जाता है। फिर उस माड़न को दूसरी मशीन पर चढ़ाते हैं जिससे पन्नी की लाइन चलने लगती है। ये लाइन आगे जाकर हीटर द्वारा काट दी जाती है। जिस साइज़ की पन्नी चाहिए उस साइज़ की पन्नी के बण्डल बाँध-बाँधकर बोरी में डालते रहते हैं। हीटर की वजह से फैक्ट्री का तापमान हमेशा 40 सेंटीग्रेड से भी ऊपर रहता है क्योंकि दोनों मशीनों पर करीब 12 हीटर लगे होते हैं। जनवरी की कड़ाके की ठण्ड के समय भी इन फैक्ट्रियों का तापमान इतना रहता है कि लोग कच्छा-बनियान पहनकर काम कर सकते हैं। गर्मियों के दिनों में आये दिन लोगों को बुखार, पेटदर्द, उल्टी-दस्त, चक्कर आना, कमज़ोरी आदि बीमारी लगी रहती है। फैक्ट्री में एक-दो पंखे हैं भी मगर उसकी हवा नहीं खा सकते क्योंकि पंखा चलने से पन्नी उड़ती है और प्रोडक्शन में बाधा पड़ती है। प्लास्टिक गलाने से निकलने वाली ज़हरीली गैस से भी सेहत को नुकसान पहुँचता है। ज़्यादा समय तक इन कारख़ानों में काम करने वाले मज़दूरों को साँस की तकलीफ़ भी होने लगती है।

पन्नी लाइन में ज़्यादातर मशीनें ठेके पर ही चलती हैं। एक किलो पन्नी बनाने का ठेकेदार को 70 पैसा मिलता है। 24 घण्टे लगातार दो मशीनें चलने पर करीब 1800 किलो दाने की खपत होती है जिससे करीब 1200 रुपये का काम 24 घण्टे में हो पाता है। एक मशीन पर दो लोग रहते हैं। दो हेल्परों को 12 घण्टे के हिसाब से 6000 रुपये महीना (बिना छुट्टी के) देने पर रोज़ का 400 रुपये निकल जाता है। ठेकेदारी में एक आदमी को 12 घण्टे काम के लगभग 400 रुपये बच जाते हैं। अगर 4 छुट्टी काटकर 26 दिन तक काम लगातार चले तो करीब 8-9 हज़ार रुपये बच जाते हैं। 4 छुट्टी करने पर 12 घण्टे तो सिर्फ़ मशीन गर्म करने में ही चले जाते हैं क्योंकि ठण्डी मशीन को गर्म करने में करीब 3 घण्टे का समय लगता है। इसके अलावा ठेकेदार की सरदर्दी ये भी रहती है कि माल की खपत नहीं हुई तो बैठे रहो, मशीन ख़राब हो जाये तो बैठे रहो। कभी-कभार तो ऐसा भी होता है कि ख़राब मशीन को सही करते-करते 8-9 दिन लग जाते हैं। माल की खपत कम होने की वजह से मालिक को भी बहाना मिल जाता है। इन दिनों में भी ठेकेदार व लेबर को खाली बैठना पड़ता है। मालिक को न तो काम करवाने की सरदर्दी, न हिसाब-किताब, लेखा-जोखा की सरदर्दी, न फण्ड-बोनस, ई.एस.आई. की सरदर्दी। कोई दुर्घटना हो जाये तो भी मालिक साफ़ हाथ झाड़ लेता है। बस महीने में ठेकेदार अपना ब्योरा बताता है कि इस महीने में इतने टन माल बनाया और मालिक 70 पैसा प्रति किलो के हिसाब से भुगतान कर देता है। इस असुरक्षा में मारा जाता है मज़दूर।

आज अकेले-अकेले लोग अपनी समस्याओं से उबरने के जितने रास्ते निकालते हैं, उतना ही मज़दूर समस्याओं के भँवर में फँसता जाता है। हल सिर्फ़ एक ही है कि अपनी वर्ग एकता को पहचानो और एकजुट होकर अपना हक़ लेने की लड़ाई लड़ो। तभी हमारी समस्याओं का समाधान होगा।

– मोती, दिल्ली

मज़दूरों का अमानवीकरण

सुबह 8 बजे मैं गुड़गाँव के उद्योग विहार में काम तलाशने आ पहुँचा। काम तलाशते-तलाशते शनि मन्दिर के पास लेबर चौक पर पहुँचा। जिनको काम मिला वो निकल गये। जिनको काम नहीं मिला वो भी इन्तज़ार करते-करते 1 बजे तक घर चले गये। उनमें से कुछ ऐसे थे जिनको कई दिनों से काम नहीं मिला था। ऐसे लोगों की संख्या वहाँ करीब 40 थी। मैं वहाँ करीब तीन बजे तक रुका। तब तक वे सब वहाँ मौजूद थे।

वहीं चौक पर मेरी मुलाक़ात एक भिखारी से हुई जिसकी उम्र करीब 35 साल थी। शरीर से स्वस्थ था। सभी मज़दूर उसको घेरकर सलाह दे रहे थे–अरे अभी जवान हो, भीख क्यों माँग रहे हो। कहीं काम क्यों नहीं कर लेते। तो उसने अपनी कहानी सुनायी कि भइया मैं भिखारी नहीं हूँ। एक महीना पहले काम की तलाश में गुड़गाँव आया था। मेरे पास करीब छह सौ रुपये थे। रहने का ठिकाना नहीं था। रात में सड़क किनारे सो रहा था। पुलिस वाले आये, मारा-पीटा, मेरे रुपये भी छीन लिये। मैंने ख़ूब हाथ जोड़े, रोया, गिड़गिड़ाया पर वे गाली-गलौच करके और यह कहकर चले गये कि अगली बार यहाँ दिखायी दिये तो जेल में डाल दूँगा। मैं गाँव से आया था, घर में बीवी-बच्चे मेरी राह देख रहे होंगे। तो मैं डर गया। यही सोचकर तसल्ली कर ली कि चलो हाथ-पैर सही सलामत है। कहीं किसी कम्पनी में काम मिल जायेगा। 3 दिन तक लगातार फैक्ट्रियों के चक्कर काटता रहा, मगर काम नहीं मिला। किसी होटल वाले का काम करके प्लेट धोकर माँगने से खाना मिल जाता था। सो मैं ज़िन्दा हूँ। फिर एक रात पुलिस वाले तो नहीं मगर तीन पियक्कड़ों से मेरी मुठभेड़ हो गयी। वे यहीं लोकल के ही गुण्डे टाइप के थे। नशे में मुझसे मारपीट की और मेरा पैण्ट और कमीज़ भी फाड़ दिया। अब मेरे पास दो रास्ते थे। या तो में मौत को अपने गले लगाऊँ या जैसे-तैसे ज़िन्दा रहूँ। तो लोगों से माँग-जाँचकर ही ज़िन्दा हूँ। अब मेरे पास ये शरीर और एक यही चड्ढी बनियान ही रह गया। मेरी बीवी और दो छोटे-छोटे बच्चे मेरा इन्तज़ार कर रहे होंगे कि पापा दिल्ली में पैसा कमाने गये हैं। और एक दिन हम सबकी हालत अच्छी हो जायेगी।

अब ये कथित भिखारी दिन-रात शराब के नशे में चूर रहता है और अब इसे कोई परेशान नहीं करता। लोग कह रहे थे, अब ये ज़्यादा दिन ज़िन्दा नहीं रहेगा।

– शिवानन्द

''लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की ज़रूरत है। ग़रीब मेहनतकश व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति है, इसलिए तुम्हें इनके हथकण्डों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न कुछ करना चाहिए। संसार के सभी ग़रीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही है। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताकत अपने हाथ में लेने का यत्न करो''

-शहीद भगतसिंह

रोज़ी-रोटी की तलाश में शहर आये एक मज़दूर की कहानी, उसी की ज़ुबानी

"करीब इक्कीस साल पहले मैं और मेरा छोटा भाई मोहन पहली बार दिल्ली आये थे। जिनके यहाँ हम ठहरे थे वह गाँव के नाते से हमारे चाचाजी थे। दो दिन तक तलाशने पर भी जब काम नहीं मिला, तो चाचाजी ने हमें कमरे से निकाल दिया। कहा, 'जहाँ चाहे जाओ... यहाँ रहना है, तो कमरे का किराया और राशन का खर्च देना होगा।' हमारे पास पैसा नहीं था। मोहन ने कहा, 'मोती नगर चलते हैं, वहाँ पर गाँव के लोग रहते हैं। वहाँ जरूर कोई रास्ता निकलेगा।' हमारे पास सिर्फ़ बीस रुपये थे जिसमें से 10 रुपया किराए पर खर्च हो गये।

"एक-एक करके सभी गाँव वालों के यहाँ गये, पर जिसके पास भी जाते वह 500 रुपये कमरे का किराया और राशन का खर्च माँगता और हमारे पास सिर्फ़ 10 रुपये बचे थे। हम दोनों भाई वहीं मोती नगर में ही काम की तलाश में निकल पड़े। 500 रुपये महीना पर हमें काम मिल गया। हम दोनों ने उसी दिन से काम शुरु कर दिया। काम के बाद, हम दोनों भाई रात के नौ बजे एक पार्क में बैठे सोच रहे थे कि काम तो मिल गया, पर रहने का ठिकाना अब भी नहीं है। हम भूखे पेट पार्क में ही सो गये। सुबह होने पर मैं दो रुपये की ब्रेड लेकर आया और आखिर 36 घंटे बाद दो रुपये की ब्रेड खाकर हम दोनों वापस काम के लिए निकल पड़े। अगली रात भी हमने उसी पार्क में भूखे पेट बितायी और सुबह होने पर फिर से दो रुपये की ब्रेड खायी।

"चौथे दिन मोहन ने कम्पनी मालिक से विनती की, तो उसने कम्पनी की छत पर रहने-सोने को कह दिया। काम के छठे दिन तक हमारे पैसे ख़त्म हो गये। मोहन फिर से कम्पनी मालिक के पास अपनी समस्या लेकर गया। उसने 300 रुपये दिये जिससे हमने एक-दो बर्तन, स्टोव, चावल, तेल, नमक और हल्दी खरीदी। उस दिन चावल खाकर अनाज का जो स्वाद मिला वह किसी नशे से कम नहीं था। इसके बाद हमारे साथ एक घटना घट गयी..."

इतना कहकर वह मज़दूर चुप हो गया। उसकी आँखों में आँसू आ गये। थोड़ी देर तक वह चुप ही रहा, मानो आँसुओं को पी रहा हो। फिर बोला, "हमारी कम्पनी के पीछे की तरफ एक तबेला था। वहाँ से हम पीने का पानी लाते थे। वहाँ तक पहुँचने के लिए एक दीवार के ऊपर से होकर दूसरी छत तक जाना होता था और फिर नीचे उतरना पड़ता था। हम पानी लेकर वापस लौट रहे थे; मोहन मेरे पीछे था, कि तभी उसका पैर फिसला और वह छत से नीचे गिर गया। चौथी मंजिल से नीचे गिर पड़े मोहन को देखकर मेरे दिमाग में पहली बात यही आयी कि 'मोहन मर गया...' मैं तुरंत मग में पानी लेकर दौड़ता हुआ नीचे गया। मोहन बेहोश था। उसके मुँह पर पानी के छींटे मारे। दस मिनट बाद जब वह होश में आया, तो उसे लेकर मैं कम्पनी आया। तब तक कम्पनी खुल गयी थी।

"जैसे ही मैं कम्पनी के अन्दर घुसा, मैनेजर ने मुझे देखा और चिल्लाकर बोला, 'कहाँ मर गया था, रे महेश? लेट कैसे हो गया?' मैंने मैनेजर को पूरी घटना बतायी और मोहन की दवा लाने के लिए उससे थोड़े पैसे देने की विनती की। यह सुनते ही मैनेजर भड़क गया। बोला, 'साले, नौटंकी करता है? पानी लेने गया था कि चोरी करके भाग रहा था? चार मंजिल ऊपर से गिरकर क्या आदमी बचेगा?' मैनेजर का नाम तिलकराज था। मैंने समझाने की कोशिश की कि मोहन ऊपर से पीछे वाली टीन की छत पर गिरा और फिर गत्तों के ढेर पर गिरकर लुढ़कता हुआ नीचे जमीन पर गिर गया। उसको बहुत चोट लग गयी है... उसको दवा देना बहुत जरूरी है... पर मैनेजर कम्पनी के पीछे वाली टीन की छत पर गिरने की बात सुनकर और ज्यादा भड़क गया, 'साले, जरूर चोरी करके भाग रहा होगा... पानी भरने का बहाना मारता है? अभी पुलिस बुलाता हूँ, वो तुम दोनों भाइयों को एकदम सही दवा देगी...' मोहन मामला सँभालते हुए मुझसे बोला, 'चलो, दोनों काम पर लग जाते हैं, बाकी बाद में देखेंगे।'

"हम दोनों भाई काम में लग गये। लंच में भी छुट्टी नहीं मिली, क्योंकि मोहन के गिरने की वजह से सुबह हम दस मिनट लेट हो गये थे। मैनेजर तिलकराज एकदम जल्लाद था और सारे मज़दूर उससे डरते थे। एक दिन काम कम होने पर उसने एक मज़दूर को पीट-पीटकर उसके मुँह से खून निकाल दिया था! रात के नौ बजे काम से लौटते ही, मोहन बिस्तर पर लेट गया। उसके सारे शरीर में दर्द हो रहा था। हमारे पास एक भी पैसा नहीं था कि मैं अपने भाई को दर्द कम करने वाली एक गोली लाकर ही देता। मैंने तेल में हल्दी गर्म करके उसकी मालिश की, फिर चावल बनाकर दोनों ने खाया। वह सारी रात दर्द से कराहता रहा। मैं असहाय-सा उसके पास लेटा सोचता रहा कि हम इतने मज़दूर रोज कम्पनी में हाड़तोड़ काम करते हैं... हमारे खून-पसीने से मालिक को करोड़ों का मुनाफा होता है... अगर वो हमारी मेहनत भर का ही पैसा हमको दे दे, तो क्या गरीब हो जायेगा? हमारी ज़िन्दगी क्या इन्सानों की ज़िन्दगी है? मालिक-मैनेजर के लिए हम बस काम करने की मशीन हैं... वो हमें इन्सान ही नहीं समझते! अपने शरीर और मन पर लगे घावों के दर्द से हम दोनों सारी रात नहीं सो पाये।"

यह कहानी नहीं, एक मज़दूर की आपबीती है। उसने गाँव से आने के बाद खेतान बल्ब नाम की एक जानी-मानी कम्पनी में अपने भाई के साथ मज़दूरी करनी शुरू की। यह किसी एक कम्पनी का अनुभव नहीं है, ऐसी सैकड़ों-सैकड़ों कम्पनियाँ और लाखों-लाख मज़दूर हैं। हर जगह मालिक-मैनेजरों की ऐसी ही गुण्डागर्दी है और हर जगह मज़दूर ऐसे ही जीने को मजबूर हैं।

● **प्रस्तुतिः रामाधार**

कारख़ाना मज़दूर यूनियन ने लुधियाना में लगाया मेडिकल कैम्प

कारख़ाना मज़दूर यूनियन की तरफ़ से बीते 26 अगस्त को लुधियाना की एक मज़दूर बस्ती राजीव गाँधी कालोनी में मेडिकल कैम्प लगाया गया। दिन भर चले कैम्प में 750 से अधिक मरीज़ आये। यह मेडिकल कैम्प पूरी तरह से मुफ़्त था, लेकिन जैसा कि यूनियन ने कैम्प के पहले बाँटे गये पर्चे में और कैम्प के दौरान भी बताया गया, इस मेडिकल कैम्प का मक़सद परोपकार नहीं था बल्कि लोगों में स्वास्थ्य के बारे में जागरूकता पैदा करना और साथ ही यह बताना था कि एकसमान और बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएँ देश के हर नागरिक का अधिकार है और यह अधिकार हासिल करने के लिए एकजुट होकर संघर्ष करना होगा।

कैम्प में आये डॉक्टरों ने बताया कि इलाज के लिए आने वाले ज़्यादातर मज़दूर और उनके परिवारों के लोग कुपोषण का शिकार हैं। ख़ासकर औरतें और बच्चे भयंकर रूप में कुपोषित हैं। चमड़ी रोगों की भरमार है। डॉक्टरों ने कहा कि पौष्टिक खुराक, बेहतर रिहायशी और काम की स्थितियाँ इनकी बीमारियों का असली इलाज है। उन्होंने बताया कि अमीर वर्गों और इन ग़रीब लोगों की बीमारियाँ बिल्कुल ही अलग-अलग हैं। अमीरों की ज़्यादातर बीमारियाँ मेहनत-मशक्कत न करने और अधिक खाने के कारण होती हैं जबकि ये ग़रीब लोग हद से अधिक मेहनत करने, आराम की कमी, पौष्टिक भोजन की कमी, गन्दगी आदि के कारण बीमार हैं।

राजीव गाँधी कालोनी में रिहायशी हालात हद से अधिक बदतर हैं। इस कालोनी के सभी निवासी ग़रीब मज़दूर हैं जिनमें से ज़्यादातर लुधियाना के कारख़ानों में बेहद कम मज़दूरी पर 12-14 घण्टे काम करते हैं। बहुत से निवासी ऐसे भी हैं जो रेहड़ी आदि लगाने का काम करते हैं। ऊबड़-खाबड़ कच्ची गलियाँ, सीवेज निकासी कोई नहीं, गन्दे शौचालय, चारों तरफ़ कूड़े के ढेर, गन्दगी-बदबू-मच्छर-मक्खियों का साम्राज्य, पानी की बेहद कम सप्लाई, पीने के लिए दूषित पानी—यह हालत है इस बस्ती के। ऐसे में लोगों का स्वास्थ्य कैसा होगा इसका अन्दाज़ा लगाना कठिन नहीं है। ऊपर से स्वास्थ्य के प्रति अज्ञानता, सरकारी अस्पतालों की बदतर हालत, निजी कम्पनियों और डॉक्टरों द्वारा मरीजों की लूट और उनके स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ ने स्थिति और भी बिगाड़ दी है। सरकार व प्रशासन का मज़दूरों के हालात सुधारने की ओर कोई ध्यान नहीं है। इसलिए कारख़ाना मज़दूर यूनियन की तरफ़ से साफ़-सफाई, सीवेज, पानी, गलियों को पक्का करने आदि मुद्दों पर कालोनी निवासियों की लामबन्दी की जा रही है। म्युनिसिपल निगम दफ़्तर पर दो बार रोष प्रदर्शन किया गया जिसके बाद कुछ कदम उठाये गये जो बेहद नाकाफ़ी हैं। बड़े स्तर पर लोगों की लामबन्दी की कोशिश जारी है।

मेडिकल कैम्प के लिए सारा खर्च लोगों से घर-घर जाकर जुटाया गया। इस दौरान बाँटे गये पर्चे में बताया गया कि किस तरह पूँजीवादी व्यवस्था में लोगों के स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ किया जा रहा है। पिछले दो दशकों के दौरान लागू नयी आर्थिक नीतियों ने रही-सही सरकारी सुविधाओं को भी बाज़ार के हवाले कर दिया है। देश के ग़रीब मेहनतकश स्वास्थ्य सुविधा के अधिकार से वंचित हो चुके हैं। हर नागरिक को स्वास्थ्य सुविधा उपलब्ध कराना सरकार की ज़िम्मेदारी है लेकिन वह इससे हाथ खींच चुकी है। ऐसे में लोगों में जागरूकता, एकता और संघर्ष के जरिए ही वास्तव में स्वास्थ्य अधिकार हासिल किये जा सकते हैं।

– बिगुल संवाददाता

"...केवल चिकित्सा सेवाओं में सुधार करने से स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता, बल्कि इसके लिए जरूरी है स्वच्छता, आवास, पोषण और काम करने की स्थितियों में भी सुधार करना।...कुपोषित, फटेहाल और निर्मम शोषण की चक्की तले पिस रहे लोगों को बेहतर स्वास्थ्य और ज्ञान देना नामुमकिन है।"

– चीले के पूर्व राष्ट्रपति साल्वादोर अलेन्दे,
जो अमेरिका द्वारा प्रायोजित तख्तापलट में मारे गये थे।

आने वाले चुनाव और ज़ोर पकड़ती साम्प्रदायिक लहर

इस बार दंगा बहुत बड़ा था
ख़ूब हुई थी
ख़ून की बारिश
अगले साल अच्छी होगी
फसल मतदान की।
– गोरख पाण्डे

देश में 2014 में आम चुनाव होने हैं। हिमाचल विधान सभा के चुनाव हो चुके हैं (नतीजे 20 दिसम्बर को आयेंगे) और गुजरात में भी जल्दी ही होंगे। चुनावी पार्टियों के पास कोई मुद्दा नहीं है। भ्रष्टाचार को कांग्रेस ही नहीं, भाजपा, सपा, बसपा, तेदेपा, अकाली, रालोद, लोजपा, बीजद, द्रमुक, अन्ना द्रमुक... कोई भी छोटी बड़ी पार्टी मुद्दा नहीं बना सकती। जनता जानती है, जिसको जितना मौक़ा मिला, सबने लूटा है। कांग्रेसी सत्तासीन हैं, पुराने अनुभवी खिलाड़ी हैं, इसलिए उन्होंने ज़्यादा लूटा है। लेकिन भाजपाई भी कहाँ पीछे हैं। लालू, मायावती, मुलायम, जयललिता, करुणानिधि, बादल आदि क्षेत्रीय क्षेत्रपों के अकूत सम्पदा-संचय के बारे में भला कौन नहीं जानता।

महँगाई, बेरोज़गारी, बदहाली, भूख-कुपोषण, धनी-ग़रीब की बढ़ती खाई – यह सब कुछ चरम पर है। पर कोई पार्टी इन मुद्दों को हवा दे पाने की स्थिति में नहीं है। पिछले बाईस वर्षों के अनुभव ने यह साफ कर दिया है कि नवउदारवाद की नीतियों की जिस वैश्विक लहर ने भारत जैसे देशों के आम लोगों की ज़िन्दगी पर कहर बरपा किया है, उन नीतियों पर सभी चुनावी दलों की आम सहमति है। केन्द्र और राज्य में, जब भी और जितना भी मौक़ा मिला है, इन सभी दलों ने उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों को ही लागू किया है। चुनावी वाम दलों के जोकर भी पीछे नहीं है। उनका "समाजवाद" बाज़ार के साथ 'लिव इन रिलेशनशिप' में रहता है, अपने को अब "बाज़ार समाजवाद" कहता है और कीन्सियाई नुस्खों से नवउदारवादी पूँजीवाद को थोड़ा "मानवीय" चेहरा देने के लिए सत्ताधारियों को नुस्खे सुझाता है।

अब ज़रा भ्रष्टाचार प्रसंग की भागवत कथा भी सुन लें। नैतिकता-शुचिता के सारे ध्वजाधारी (अन्ना, केजरीवाल, रामदेव आदि) पूँजीवादी शोषण की व्यवस्था का कोई विकल्प नहीं दे रहे थे। वे भ्रष्टाचार-मुक्त पूँजीवाद चाह रहे थे। दोषी वे व्यवस्था को नहीं बल्कि व्यक्तियों को बता रहे थे। इनमें से कुछ साम्राज्यवादी वित्तपोषण से एन.जी.ओ. चलाते हैं और किसी का धर्म के नाम पर खरबों का व्यापार साम्राज्य है। इनका असली मक़सद था पूँजीवादी व्यवस्था के दामन पर लगे दाग़-धब्बों को छुड़ाकर लोगों में बढ़ते मोहभंग को रोकना। अपने मक़सद में काफी हद तक ये सफल भी रहे, पर बात ज़रा दूर तक चली गयी। समय लगते ब्रेक नहीं लग पाया। पूँजीवादी व्यवस्था जिन तमाम अन्दरूनी अन्तरविरोधों के साथ काम करती है उसमें प्रायः ऐसा होता है। दरअसल वहाँ नाटक की थीम भर तय होती है, स्क्रिप्ट और संवाद पहले से लिखे हुए नहीं होते। भ्रष्टाचार-विरोध के ध्वजवाहकों को एक (भ्रष्टाचार-मुक्त पूँजीवाद का) यूटोपिया देना था, पर उन्होंने इतनी धमा-चौकड़ी मचाई कि पूँजीवादी संसदीय राजनीति की सारी गन्द (सुअरबाड़े की गन्द) सड़क पर बिखर गयी। अब पूँजीवाद को काम तो इसी संसदीय राजनीति के ज़रिये करना है। अतः 'डैमेज कण्ट्रोल' का काम शुरू हो गया है। केजरीवाद ऐण्ड कम्पनी सामाजिक आन्दोलन से राजनीतिक पार्टी बनने की दिशा में चल पड़े हैं। अन्ना अपनी पूर्व भूमिका में हैं, ताकि फिर व्यवस्था के काम आ सकें। रामदेव इधर अपने व्यावसायिक हितों की हिफ़ाज़त में व्यस्त हैं। वैसे भी भ्रष्टाचार-विरोध, धर्म और अन्धराष्ट्रवाद की खिचड़ी परोसकर भाजपा को जितना लाभ वे पहुँचा सकते थे, उतना अब सम्भव नहीं, क्योंकि गडकरी-प्रसंग तक आते-आते भाजपा का भ्रष्ट चेहरा भी नंगा हो चुका है और रामदेव के व्यापार-धन्धे भी सबके सामने हैं।

> **"अपनी राजनीतिक समस्याओं का हल धर्मों में खोजना भारी गलती है। धार्मिक विचारों के लिए स्वतंत्रता भले ही रहे, लेकिन राजनीति में धर्म का दखल बहुत ही हानिकारक बात है।"**
> **– राहुल सांकृत्यायन**

तब फिर सभी चुनावी मदारियों के सामने यक्षप्रश्न एक ही है। आगामी लोकसभा चुनावों में उछालने के लिए किसी के पास कोई लोक-लुभावन नारा नहीं है। वैसे, रुटीनी तौर पर सभी पार्टियाँ चुनाव घोषणापत्र में कुछ वायदे करेंगी ही, पर असली खेल एक बार फिर जाति और धर्म के आधार पर जनता को बाँटकर ही खेला जा सकेगा।

यही वजह है कि साम्प्रदायिकता की राजनीति को योजनाबद्ध तरीके से हवा देने का काम शुरू हो गया है। उत्तर प्रदेश में सपा सरकार के आठ महीने के शासनकाल के दौरान मुस्लिम आबादी पर बड़े स्तर पर सुनियोजित हमले की नौ घटनाएँ घट चुकी हैं। फ़ैज़ाबाद में सुनियोजित ढंग से मुस्लिमों के घरों-दुकानों पर हमले हुए। चन्द घण्टों के भीतर रुदौली और अन्य कस्बों में तोड़-फोड़ और आगज़नी शुरू हो गयी। यानी सबकुछ पहले से तय था इसके पहले बरेली में दंगों और कर्फ्यू के बाद महीनों तनाव बना रहा। मथुरा, प्रतापगढ़, ग़ाज़ियाबाद, लखनऊ, कानपुर और इलाहाबाद की स्थिति को भी प्रशासन अतिसंवेदनशील मानता है। उधर, पूर्वी उत्तर प्रदेश के ज़िलों में योगी आदित्यनाथ की हिन्दू युवा वाहिनी की उन्मादी, भड़काऊ गतिविधियाँ और तेज़ हो गयी हैं। बाबरी मस्जिद ध्वंस काण्ड के दो चर्चित चेहरे उमा भारती और कल्याण सिंह को फिर उत्तर प्रदेश में सक्रिय कर दिया गया है। इस बार गुजरात में नरेन्द्र मोदी यदि भाजपा की नैया पार लगा देंगे, तो आर.एस.एस. उन्हें प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार के रूप में प्रोजेक्ट करने के लिए तैयार बैठा है।

भाजपा के कट्टरपंथी हिन्दुत्व की राजनीति जितनी परवान चढ़ेगी, अल्पसंख्यकों का मसीहा बनने का मुलायम सिंह को भी उतना ही मौक़ा मिलेगा। मायावती अपना दलित वोट बैंक लिये भाजपा और कांग्रेस से मोलभाव के लिए तैयार रहेंगी। कांग्रेस भी सेक्युलरिज़्म के नाम पर कुछ कमाई करना चाहेगी और राहुल गांधी को आगे करके विकास के कुछ दावे प्रस्तुत करेगी।

निचोड़ यह कि नागनाथ आयें चाहें साँपनाथ, नीतियाँ वही रहेंगी, जनता की दुर्दशा जारी रहेगी। तब फिर वोट बैंक की राजनीति धर्म और जाति के आधार पर जनता को बाँटकर ही खेली जायेगी। यह सिलसिला तबतक जारी रहेगा, जबतक जाति-धर्म-इलाके के आधार पर बाँटे जाने की साज़िश को जनता नहीं समझेगी। ग़रीब मेहनतकशों को वर्गीय आधार पर संग्रामी एकजुटता बनानी ही होगी। उनकी मुक्ति का दूसरा कोई भी रास्ता नहीं है।

• **कविता**

हक़ और इंसाफ़ के लिए लुधियाना के मज़दूरों के आगे बढ़ते क़दम

टेक्सटाइल मज़दूर यूनियन के नेतृत्व में क़दम-दर-क़दम आगे बढ़ते हुए लुधियाना के टेक्सटाइल मज़दूरों का संघर्ष लूट के शिकार मज़दूरों में नयी उम्मीद जगा रहा है। पहले बहुत से मज़दूर कहते थे 'एक परिवार के लोगों की एकता तो बनती नहीं, फिर अलग राज्य, अलग ज़िलों के लोग कैसे इकट्ठा हो जायेंगे, यह काम तो मुश्किल लगता है'। मगर अब बड़ी संख्या में मज़दूर यह समझने लगे हैं कि मज़दूर एकता बना सकते हैं और जीत भी सकते हैं।

मज़दूरों की पहलक़दमी की कुछ घटनाएँ अगस्त-सितम्बर में घटित हुईं। लुधियाना के उत्तर-पूर्व में मेहवान ग्रामीण क्षेत्र में, जो औद्योगिक क्षेत्र के रूप में विकसित हो रहा है, हरसिद्धी टेक्सटाइल फैक्ट्री में दशरथ नाम का मज़दूर पिछले काफ़ी दिनों से दिल की बीमारी से पीड़ित था। पैसे की कमी के चलते ठीक से इलाज नहीं करा सका। अचानक ही 15 अगस्त के दिन उसकी हालत ज़्यादा ख़राब हो गयी। साथी मज़दूरों ने एक निजी अस्पताल में भरती किया लेकिन वहाँ से सी.एम.सी. अस्पताल भेज दिया गया जहाँ इलाज के दौरान उसकी मौत हो गयी। इस घटना को लेकर मज़दूरों में दुख और रोष की भावना थी। टेक्सटाइल मज़दूर यूनियन के नेतृत्व में आसपास की फैक्ट्रियों के मज़दूरों ने काम बन्द करके हरसिद्धी के मालिक को मुआवज़े के तौर पर एक लाख रुपये दशरथ के बच्चों को देने के लिए मजबूर किया। यह मालिक भी बाकी फैक्ट्री मालिकों की तरह ही मज़दूरों को दुर्घटना बीमा, ई.एस.आई., ई.पी.एफ. जैसी कोई भी सुविधा नहीं देता, जबकि उसका मुनाफ़ा दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है। अगर अचानक दुर्घटना अथवा बीमारी से मज़दूर की मौत हो जाये तो उसका परिवार भूखों मरने के लिए मजबूर होता है। मृतक दशरथ के अन्तिम संस्कार में उस इलाक़े की लगभग 20 फैक्ट्रियों के मज़दूर दो घण्टे के लिए काम बन्द करके शामिल हुए। मज़दूरों के इस भाईचारे से फैक्ट्री मालिकों के दिलों में बेचैनी पैदा हो गयी। कई फैक्ट्री मालिकों ने संस्कार में जाने के बारे में अपने मज़दूरों को फटकार लगायी। इस घटना से मालिकों की मुनाफ़ा-भक्ति और लुटेरा चेहरा मज़दूरों में और नंगा हुआ। कई मज़दूर जो मालिकों के भक्त थे वे भी सोचने के लिए मजबूर हो गये कि फैक्ट्री मालिक अपने दोस्तों-रिश्तेदारों की मौत पर जा सकता है तो मज़दूर अपने साथी की मौत पर क्यों नहीं जा सकते!

मुआवज़ा दिलाने के लिए चार दिन की हड़ताल

इस घटना के तीन दिन बाद इसी इलाक़े की श्रीराम टेक्सटाइल में काम करने वाले मज़दूर अवधेश पाठक की अचानक मौत हो गयी। मौत के कारण का पता नहीं चल सका। लेकिन सभी मज़दूर कह रहे थे कि अन्तिम संस्कार से लौटने पर मालिक ने अवधेश को काफी डाँटा था, जिससे वह काफी परेशान लग रहा था। शुक्रवार 20 अगस्त रात को अवधेश सोया तो सुबह जागा ही नहीं।

इस घटना के बारे में मालिक को बताने पर वह आया और अवधेश के परिवार के लिए मुआवज़ा देने का वायदा करके चला गया। अवधेश के परिवार वालों को गाँव से बुलाया गया। अवधेश के अन्तिम संस्कार वाले दिन की सुबह से ही मज़दूर काम पर नहीं गये। सभी फैक्ट्रियाँ बन्द रहीं। मालिक अवधेश के भाई को 20,000 रुपये देने पर राज़ी हुआ और बोला इससे ज़्यादा नहीं देगा। मालिक के इस व्यवहार से नाराज़ मज़दूरों ने टेक्सटाइल मज़दूर यूनियन के नेतृत्व में मालिक से एक लाख रुपये की माँग की क्योंकि इस फैक्ट्री में अवधेश 6 साल से काम करता था और यहाँ भी कोई श्रम क़ानून लागू नहीं होता था। इस घटना के कारण इस इलाक़े की लगभग 20 पावरलूम फैक्ट्री के मज़दूर हड़ताल पर रहे और फैक्ट्री गेट के पास धरना दिया। अन्त में अवधेश के भाई ने घर जाकर रस्में निभाने के दबाव में मालिक से 50,000 रुपये के मुआवज़े पर समझौता कर लिया तब हड़ताल ख़त्म हुई।

घमण्डी मालिक के ख़िलाफ़ संघर्ष

शक्तिनगर इलाक़े में एक मालिक हरीश ने एक मज़दूर को धक्केशाही से काम से हटा दिया। उसका जुर्म यह था कि उसने अपने साथी मज़दूर को बोनस का पैसा दिलाने के लिए मालिक से बात की थी। मालिक की इस हरकत से नाराज़ मज़दूरों ने काम बन्द कर दिया और आसपास की फैक्ट्रियों के मज़दूर भी पूछताछ के लिए आने लगे, तभी फैक्ट्री मालिक हरीश ताला लगाकर भाग गया। पुलिस स्टेशन बस्ती ओधेवाल के पुलिसकर्मी रिपोर्ट लिखने में आनाकानी कर रहे थे। मज़दूरों ने पुलिस के इस व्यवहार के विरोध में जमकर नारेबाज़ी की तो पुलिस का रुख बदला और जल्द कार्रवाई का आश्वासन देने पर ही मज़दूर शान्त हुए। इसी समय टेक्सटाइल मज़दूर यूनियन के नेतृत्व में मज़दूरों ने दोषी मालिक के फैक्ट्री गेट पर रैली की और यह ऐलान किया कि जो मालिक आरोपी मालिक का साथ देगा उसके कारख़ाने में भी चक्काजाम कर दिया जायेगा। एक तरफ मज़दूरों की एकता के विरोध में मालिक एक भी हो जाते हैं, तो दूसरी तरफ अपने मुनाफ़े के लिए उनके बीच की गलाकाटू होड़ भी दिखायी देती है। अपना काम बन्द होने के डर से दूसरे मालिक, हरीश के साथ थाने जाने से बचते दिखे, कुछ इस घटना के लिए हरीश की निन्दा भी कर रहे थे। अगले दिन थाने में समझौता हुआ। जिस मज़दूर को मालिक निकाल रहा था उसको काम पर रखा, जिस मज़दूर के बोनस को लेकर झगड़ा था उसका बोनस दिया और आगे से बदले की कोई कार्रवाई करने पर पुलिस ने सख़्त कार्रवाई का भरोसा दिया। इस घटना के दौरान टूटी दिहाड़ी देने लिए मज़दूरों ने मालिक को मजबूर किया और दो-दो दिन की दिहाड़ी लेकर ही काम पर गये।

मज़दूर पंचायत का आयोजन

इसी दौरान 19 अगस्त को टेक्सटाइल मज़दूर यूनियन की तरफ से मज़दूर पंचायत बुलायी गयी। ज़ोरदार बारिश के बावजूद लगभग 700 मज़दूरों ने पंचायत में हिस्सा लिया। इस पंचायत की तैयारी में यूनियन की तरफ से टेक्सटाइल व होज़री मज़दूरों में बड़ी संख्या में परचे बाँटे गये और विचार-विमर्श के लिए कुछ माँगें भी सुझायी गयीं जिन पर

(पेज 2 पर जारी)

मारुति के मज़दूर आन्दोलन को इलाक़ाई मज़दूर उभार का रूप दो!

(पेज 1 से आगे)

आई.-पी.एफ. आदि का हक़) की बात करते हैं, वैसे ही उन्हें "देश और राष्ट्र" का दुश्मन घोषित कर दिया जाता है और उनसे सरकार और प्रशासन ऐसा बर्ताव करते हैं मानो वे अपराधी हों! समझा जा सकता है कि यह "देश" धनपतियों का देश है, हमारा नहीं। यह 'इण्डिया इंक.' है; यह 'ब्राण्ड इण्डिया' है; हमारे देश ने तो कभी तरक़्क़ी देखी नहीं! हमारा देश तो बेरोज़गारी, महँगाई, बेघरी, भुखमरी, कुपोषण, असुरक्षा और अनिश्चितता के बोझ तले दबा हुआ है! पुलिस उनकी है, फौज उनकी है, अदालतें उनकी हैं, सरकारें उनकी हैं, नेताशाही और नौकरशाही भी उनकी है! गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा-बावल से लेकर भिवाड़ी और खुशखेड़ा तक के कारख़ानों में गुलामों जैसे हालात में खट रहे मज़दूर पूँजीपतियों के "देश और राष्ट्र" की सच्चाई को अच्छी तरह समझते हैं, और मारुति सुज़ुकी के मज़दूर पिछले दो वर्षों से इस हक़ीक़त से लगातार रूबरू हो रहे हैं।

मारुति सुज़ुकी के मज़दूर आन्दोलन के नये दौर की शुरुआत: आगे का रास्ता क्या हो?

21 सितम्बर को 546 मज़दूरों को निकाले जाने के साथ मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों की लड़ाई का दूसरा चरण शुरू हो गया। इस चरण का सबसे अहम मुद्दा है निकाले गये मज़दूरों की बहाली और गिरफ़्तार बेगुनाह 149 मज़दूरों की रिहाई। 7 और 8 नवम्बर को हड़ताल और रैली के साथ मारुति सुज़ुकी के निकाले गये मज़दूरों ने फिर से आन्दोलन का बिगुल फूँक दिया है। जब भूख हड़ताल और रैली का आह्वान किया गया तो गिरफ़्तार मज़दूरों ने भी जेल के भीतर भूख हड़ताल करने का ऐलान किया। इसके जवाब में पुलिस प्रशासन ने उन्हें और अधिक बर्बर यातनाएँ देने की धमकी दी। इसके बावजूद जेल में बन्द मज़दूर साथी टूटे नहीं। कारख़ाने के भीतर भी मज़दूरों ने आन्दोलनकारी मज़दूरों से एकजुटता जाहिर की और दोपहर के खाने का बहिष्कार किया। उन्हें भी तोड़ने के लिए कम्पनी और प्रशासन ने हर प्रकार के हथकण्डे अपनाये लेकिन असफल रहे। मारुति सुज़ुकी के संघर्षरत मज़दूरों ने दिखला दिया है कि प्रशासन और प्रबन्धन की दमनकारी नीतियों के आगे वे घुटने टेकने वाले नहीं हैं। लेकिन संघर्ष के इस नये दौर के शुरू होते ही हमारे सामने यह जलता हुआ सवाल आ खड़ा हुआ है–**आगे संघर्ष का रास्ता क्या हो?** संघर्ष के सामने आज कई चुनौतियाँ हैं। फिलहाल संघर्ष निकाले गये और गिरफ़्तार किये गये स्थायी मज़दूर चला रहे हैं। ठेका मज़दूरों की अच्छी-ख़ासी आबादी अभी संघर्ष से कट गयी है। कम्पनी ने तमाम ठेका मज़दूरों को 'होल्ड' पर रखा है। उन्हें स्थायी करने के बहाने कम्पनी ने साक्षात्कार के लिए बुलाया था लेकिन उनसे साक्षात्कार में सिर्फ़ यह जानने की कोशिश की गयी कि 18 जुलाई की घटना के दिन वे कहाँ थे और आन्दोलन में उनकी क्या भूमिका है! फिलहाल कम्पनी ने उन्हें स्थायी करने का आश्वासन देकर छोड़ दिया है, ताकि वे अधर में लटके रहें और तब तक किसी भी प्रकार की आन्दोलनात्मक गतिविधि में शिरकत न करें। कम्पनी की यह चाल एक हद तक कामयाब भी रही है और आन्दोलन के सामने यह चुनौती मौजूद है कि फिर ठेका मज़दूरों की अच्छी-ख़ासी आबादी की आन्दोलन में शिरकत किस प्रकार बने। लेकिन यह आन्दोलन के सामने मौजूद एकमात्र चुनौती नहीं है। इससे बड़ी चुनौतियाँ आन्दोलन का इन्तज़ार कर रही हैं। **सवाल यह है कि अब आन्दोलन आगे कैसे बढ़े और अपनी माँगों को पूरा कैसे करवाये?**

मारुति सुज़ुकी के आन्दोलनरत मज़दूर संघर्ष के अपने अब तक के अनुभव से जानते हैं कि हरियाणा सरकार, केन्द्र सरकार और यहाँ तक कि न्यायपालिका तक कम्पनी और प्रबन्धन के पक्ष में खुले तौर पर खड़ी हैं। पुलिस से लेकर नौकरशाही तक हर क़दम पर मज़दूर-विरोधी कार्रवाइयाँ कर रहे हैं। मज़दूरों और उनके परिवारों को डराने-धमकाने और प्रताड़ित करने का सिलसिला लगातार जारी है। चुनावी पार्टियों से जुड़ी तमाम केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों की भूमिका भी मज़दूर अच्छी तरह समझ चुके हैं। वे जान चुके हैं उनकी भूमिका मालिकों के पक्ष में समझौता करवाकर आन्दोलन को समाप्त करने वाले दलालों की है, न कि मज़दूरों के जुझारू संगठन की। ऐसे में, जबकि सरकार, प्रशासन, न्यायपालिका, और केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें तक पूँजी के पक्ष में खड़ी हैं, तो मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों के पास क्या ताक़त है, जिससे कि वे पूँजी की इन संगठित ताक़तों के ख़िलाफ़ लड़ सकें? वह ताक़त है मज़दूरों की वर्ग एकजुटता की ताक़त। और यहाँ हम महज़ मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों की वर्ग एकता की बात नहीं कर रहे हैं। हम यहाँ समूचे गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा-बावल के औद्योगिक क्षेत्र के समस्त मज़दूरों की वर्ग एकता की बात कर रहे हैं। आज मारुति सुज़ुकी मज़दूर आन्दोलन के समक्ष जो सबसे बड़ी चुनौती खड़ी है वह है इस पूरे औद्योगिक क्षेत्र के मज़दूरों के साथ वर्ग एकजुटता क़ायम करना। वास्तव में, इस औद्योगिक क्षेत्र के अधिकांश कारख़ानों, और विशेषकर ऑटो- मोबाइल सेक्टर के कारख़ानों के मज़दूर मारुति सुज़ुकी मज़दूर आन्दोलन के साथ हमदर्दी रखते हैं और उसका सक्रिय समर्थन करना भी चाहते हैं। लेकिन इन कारख़ानों में जो ट्रेड यूनियनें हैं वे उन्हीं केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संघों से जुड़ी हैं जिनका काम मज़दूर आन्दोलनों में मालिकों के पक्ष से दलाली करना होता है। नतीजतन, मारुति सुज़ुकी मज़दूरों के संघर्ष के हर प्रदर्शन या हड़ताल में इन कारख़ानों की ट्रेड यूनियनों के नेता ज़ुबानी समर्थन देने तो आ जाते हैं, लेकिन इन कारख़ानों के मज़दूरों को मारुति सुज़ुकी मज़दूरों के आन्दोलन के समर्थन में कुछ भी नहीं करने देते। 7 और 8 नवम्बर को हुई भूख हड़ताल और रैली में भी गुड़गाँव के मारुति सुज़ुकी कारख़ाने के मज़दूर शामिल होना चाहते थे, लेकिन वहाँ की यूनियन ने ऐसा नहीं होने दिया। इससे साफ़ तौर पर पता चलता है कि मारुति सुज़ुकी के आन्दोलनरत मज़दूरों को अन्य कारख़ानों के मज़दूरों से समर्थन लेने का सीधा रास्ता अपनाना पड़ेगा। जब तक वे इन कारख़ानों की यूनियनों की नेताशाही-नौकरशाही के रास्ते उन मज़दूरों का समर्थन लेंगे, तब तक उन्हें इन यूनियनों के नेताओं के हवाई गोले, यानी समर्थन का ज़ुबानी जमाख़र्च, ही मिलेगा। अगर मारुति सुज़ुकी के आन्दोलनरत मज़दूर सीधे इन कारख़ानों के मज़दूरों से समर्थन माँगें तो उन्हें एक अच्छी-ख़ासी मज़दूर आबादी का सक्रिय समर्थन और भागीदारी हासिल हो सकती है।

हमारे हित, समस्याएँ और माँगें साझा हैं! हमारा संघर्ष भी साझा होना चाहिए!

गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा-बावल से लेकर भिवाड़ी और खुशखेड़ा तक के कारख़ानों, और विशेषकर ऑटोमोबाइल सेक्टर के कारख़ानों, के मज़दूर मारुति सुज़ुकी मज़दूर आन्दोलन का समर्थन इसलिए करते हैं क्योंकि मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों ने जिन माँगों, मुद्दों और समस्याओं को लेकर अपने आन्दोलन की शुरुआत की थी, वे सिर्फ़ उनकी ही माँगें नहीं हैं। वे समूचे ऑटोमोबाइल सेक्टर, बल्कि गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा-बावल की पूरी औद्योगिक पट्टी के मज़दूरों की माँगें हैं। इस पूरी औद्योगिक पट्टी में मज़दूर दलाल ट्रेड यूनियनों से अलग अपनी स्वतन्त्र ट्रेड यूनियनें नहीं बना सकते, क्योंकि मालिकान और प्रबन्धन स्वतन्त्र ट्रेड यूनियनों से डरते हैं। उनके लिए दलाल ट्रेड यूनियनों के ज़रिये मज़दूरों के आन्दोलन को दबाकर रखना और उसे अपनी जेब में रखना आसान रास्ता लगता है। मज़दूर अगर स्वतन्त्र ट्रेड यूनियन बनाने का प्रयास करते हैं तो उन्हें दबाने और कुचलने के सभी हथकण्डे अपनाये जाते हैं। अगर मज़दूर चुनावी पार्टियों की दलाल ट्रेड यूनियनों से अलग क्रान्तिकारी संगठनों की सहायता से संगठित होने का प्रयास करते हैं, तो ये केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें नंगे शब्दों में मज़दूरों को चेतावनी देती हैं कि वे क्रान्तिकारी संगठनों का साथ छोड़ दें! असुरक्षा के कारण मज़दूर इस धमकी के समक्ष कई बार झुक भी जाते हैं, क्योंकि उन्हें इस बात का डर सताता है कि कहीं ऐसा न हो कि उनकी हिमायत और मदद करने वाला कोई न रहे! लेकिन यह एक आधारहीन भय है क्योंकि **वैसे भी केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों के ज़रिये मज़दूर पिछले दो-तीन दशक में अपना कौन-सा संघर्ष जीत पाये हैं? मज़दूर कब इन दलाल ट्रेड यूनियनों के नेतृत्व में अपनी जायज़ माँगें मनवा पाये हैं? जिन भी आन्दोलनों के नेतृत्व में ये ट्रेड यूनियन संघ रहे हैं, अन्त में उसमें हार मिली है और कोई ऐसा समझौता हुआ है, जिसमें मालिकों के दोनों हाथ में लड्डू रहे हैं, और मज़दूरों के दोनों ही हाथ ख़ाली! नोएडा के आई.ई.डी. से लेकर एलाइड निप्पन, गुड़गाँव के होण्डा से लेकर रिको के आन्दोलन तक में क्या हमने इन यूनियनों की सच्चाई को नहीं देखा है?**

समूचे गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा-बावल औद्योगिक पट्टी में मज़दूर कारख़ाना प्रशासन की तानाशाही, काम की ख़राब स्थितियों, न्यूनतम मज़दूरी, 8-घण्टे के कार्यदिवस, डबल रेट से ओवरटाइम से लेकर ई.एस.आई.-पी.एफ. तक के श्रम क़ानूनों के लागू न होने के कारण परेशान हैं। उनके भीतर गुस्सा और नफ़रत है। चुनावी पार्टियों और विशेषकर संसदीय वामपंथियों की दलाल ट्रेड यूनियनों से अलग अपनी यूनियन बनाने के मुद्दे से लेकर उपरोक्त सभी अधिकारों के हनन के कारण उनकी स्थिति मज़दूरी के बदले में गुलामी करने वाले गुलामों जैसी हो गयी है। हालिया वर्षों में, इस पूरी औद्योगिक पट्टी में मज़दूरों के जो आन्दोलन विस्फोट की तरह एक के बाद एक फूटे हैं, उसके पीछे ये ही कारण हैं। मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों ने जो संघर्ष छेड़ा है उसने ये ही सारे मसले उठाये हैं, और इसीलिए इस क्षेत्र के सभी कारख़ानों के मज़दूर इस आन्दोलन का दिल से समर्थन करते हैं, लेकिन अपने-अपने कारख़ानों की ट्रेड यूनियन नेताशाही-नौकरशाही के कारण सीधे आन्दोलन के समर्थन में नहीं आते। सरकार, प्रशासन, कम्पनियाँ, पुलिस, न्यायपालिका, नौकरशाही, दलाल ट्रेड यूनियनें, संसदीय वामपंथियों समेत सभी पूँजीवादी चुनावी पार्टियाँ और मीडिया सभी मज़दूरों के इस शोषण और उत्पीड़न में एक साथ हैं। पूँजी की इन सभी संगठित शक्तियों के निशाने पर महज़ मारुति सुज़ुकी के मज़दूर नहीं हैं, बल्कि समूचा मज़दूर वर्ग है। मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों के आन्दोलन के निशाने पर भी वास्तव में समूची पूँजीवादी व्यवस्था है। इस बात को मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों से बेहतर कौन समझता है, जिन्होंने खुद अपनी आँखों से देखा कि किस तरह जब उन्होंने अपनी जायज़ माँगों को लेकर कम्पनी के मालिकान और प्रबन्धन के ख़िलाफ़ संघर्ष शुरू किया, तो समूची सरकारी मशीनरी, पुलिस, अदालतें, खुफ़िया विभाग और मीडिया उन पर टूट पड़ा। क्या अब भी उन्हें कोई भ्रम है? हमें नहीं लगता!

इसलिए जब इस समूचे औद्योगिक क्षेत्र के मज़दूरों के मुद्दे एक हैं, उनकी समस्याएँ एक हैं, उनकी माँगें एक हैं, तो क्या उनका संघर्ष भी एक नहीं होना चाहिए? निश्चित तौर पर, आज मारुति सुज़ुकी कम्पनी में मुद्दा उठा है; 2005 में मुद्दा होण्डा में उठा था; उसके बाद रिको में; यह सूची अन्तहीन है! कल को मुद्दा किसी और कारख़ाने में होगा। लेकिन मुद्दे वही हैं! आज ज़रूरत इस बात की है कि मारुति सुज़ुकी के मज़दूर सीधे अन्य कारख़ानों के मज़दूरों का सक्रिय समर्थन हासिल करें! अन्य कारख़ानों के अपने साथियों के पास हमें दलाल ट्रेड यूनियनों के नेताओं-नौकरशाहों के ज़रिये जाने की कोई ज़रूरत नहीं है। उनके पास जाने से हमें एक बार फिर से नपुंसक ज़ुबानी समर्थन मिल जायेगा, जिसका अब तक के हमारे आन्दोलन में कोई अर्थ नहीं रहा है। मारुति सुज़ुकी के संघर्षरत मज़दूरों को प्रचार टोलियाँ बनाकर अन्य कारख़ानों के मज़दूरों के बीच सीधे प्रचार के लिए जाना चाहिए, उन्हें बताना चाहिए कि हमारी समस्याएँ और माँगें एकसमान हैं; उन्हें बताना चाहिए कि आज मसला मारुति सुज़ुकी में उठा है, लेकिन कल यह उनके कारख़ानों में भी उठेगा; यह समझना चाहिए कि अगर आज से ही हम कारख़ाना-पारीय, सेक्टर-पारीय मज़दूर एकजुटता स्थापित नहीं करते, तो आज न तो मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों का संघर्ष जीता जा सकता है, और न ही कल अन्य किसी भी कारख़ाने के मज़दूरों का; उन्हें यह बताना चाहिए कि आज मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों के आन्दोलन को उनकी सक्रिय भागीदारी और समर्थन की ज़रूरत है क्योंकि इसके बिना यह आन्दोलन जीता नहीं जा सकता; उन्हें यह भी बताना होगा कि आज मारुति सुज़ुकी मज़दूर आन्दोलन की हार का अर्थ इस समूची औद्योगिक पट्टी के मज़दूरों की हार होगी! हमें पूरा यक़ीन है कि मारुति सुज़ुकी के आन्दोलनरत मज़दूर यदि इस प्रकार का सीधा प्रचार अभियान चलायें तो गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा-बावल के औद्योगिक क्षेत्र की एक बड़ी मज़दूर आबादी का प्रत्यक्ष और सक्रिय समर्थन और भागीदारी उन्हें मिल सकती है। इसके बिना, यह आन्दोलन अपने मुक़ाम तक नहीं पहुँच सकता, और इसके बिना इस क्षेत्र का कोई भी भावी आन्दोलन शायद ही सफलता हासिल करे।

(पेज 7 पर जारी)

मारुति के मज़दूर आन्दोलन को इलाक़ाई मज़दूर उभार का रूप दो!

(पेज 6 से आगे)

मारुति सुज़ुकी के मज़दूर आन्दोलन को कारख़ाने की चौहद्दी से आगे जाना होगा!

इस समय हरियाणा की सरकार मज़दूरों के दमन में पूरे देश में नयी-नयी मिसालें कायम कर रही है। इतने खुले और नग्न तौर पर शायद ही किसी राज्य की सरकार पूँजीपतियों के पक्ष में दमन करती हो, जितना कि हरियाणा की हुड्डा सरकार करती है। मारुति सुज़ुकी में 18 जुलाई की घटना के बाद ही हरियाणा सरकार के उद्योग मन्त्री रणदीप सिंह सुरजेवाला के बयानों को टी.वी. चैनलों और अख़बारों में देखा-सुना जा सकता था; ऐसा लगता था मानो मारुति सुज़ुकी कम्पनी का कोई प्रबन्धक बोल रहा हो! एक सरकारी मन्त्री सीधे, बिना किसी निष्पक्ष जाँच के मज़दूरों को दोषी घोषित कर रहा था, उन्हें आतंकवादी और "माओवादी" करार दे रहा था। 18 जुलाई की घटना के बाद जिस तरीक़े से मज़दूरों का नग्न और बर्बर दमन किया गया, जिस प्रकार न्यायपालिका से लेकर नेताशाही- नौकरशाही तक एक सुर में मज़दूरों के ख़िलाफ़ नफ़रत फैला रहे थे, उससे साफ़ ज़ाहिर है कि हरियाणा सरकार आगे भी मज़दूरों के किसी भी आन्दोलन का ऐसा ही नग्न दमन करेगी। ऐसे में, यह सोचने की बात है कि क्या एक-एक कारख़ाने की लड़ाइयों को जीता जा सकता है? मारुति सुज़ुकी इस पूरे औद्योगिक क्षेत्र के बड़े कारख़ानों में से एक है; अगर इस कारख़ाने के मज़दूरों के आन्दोलन को भी इस प्रकार के दमन का सामना करना पड़ता है, और हम इसके जवाब में कोई विशेष प्रभावी कार्रवाई नहीं कर पाते, हालाँकि हम हार भी नहीं मानते और अपना आन्दोलन जारी रखते हैं, तो यह सोचने की बात है कि क्या अलग-अलग कारख़ानों के संघर्षों को अलग-अलग रहकर जीता जा सकता है? यह निश्चित तौर पर बेहद मुश्किल है। अलग-अलग कारख़ानों के संघर्षों के विजय की सम्भावनाएँ आज बेहद कम होती जा रही हैं। इसके दो कारण हैं: पहला, सरकार का नग्न होता बर्बर दमनकारी चरित्र; और दूसरा, पूरी पूँजीवादी उत्पादन प्रक्रिया को लगातार विखण्डित किया जाना। मारुति सुज़ुकी ने भी अपनी पूरी उत्पादन प्रक्रिया को काफ़ी हद तक विकेन्द्रित किया है, और उसके कई पुरज़ों का उत्पादन सैकड़ों वेंडर कम्पनियों और सहायक औद्योगिक इकाइयों में होता है। यह प्रक्रिया आगे और बढ़ेगी। **गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा-बावल और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के अन्य औद्योगिक क्षेत्रों के संघर्षों से ही नहीं, बल्कि पूरे देश के सभी हिस्सों के हालिया मज़दूर आन्दोलनों ने इस बात को साबित किया है कि मज़दूरों के इलाक़ाई संगठन और उभार के ज़रिये ही कारख़ानों के आन्दोलन भी विजयी हो सकते हैं। अधिकांशतः, कारख़ानों के संघर्ष निश्चित तौर पर कारख़ानों में ही शुरू होंगे, लेकिन इनमें से जो भी कारख़ानों के भीतर ही क़ैद रह जायेंगे और संघर्ष को कारख़ानों की चौहद्दी के पार विकसित नहीं करेंगे, उनकी सफलता की उम्मीद कम है। यह समझना आज देश के मज़दूर आन्दोलन के लिए केन्द्रीय महत्व की बात है।**

इसलिए मारुति सुज़ुकी के आन्दोलनरत मज़दूरों को भी यह समझना होगा कि उनका आन्दोलन जब तक कारख़ानों की चौहद्दी में कैद रहेगा, जब तक उसे अन्य कारख़ानों का "समर्थन" इन कारख़ानों की दलाल ट्रेड यूनियन नौकरशाही-नेताशाही के ज़ुबानी जमाख़र्च के तौर पर मिलेगा, और जब तक वे अपने आन्दोलन को इलाक़ाई तौर पर फैलायेंगे नहीं, तब तक इसके सफलता की उम्मीद कम रहेगी। ज़रा सोचिये! क्या 546 मज़दूर और उनके परिवारों के संघर्ष (चाहे वह कितना भी बहादुराना और जुझारू क्यों न हो) के बूते मारुति सुज़ुकी के मालिकान और प्रबन्धन के ख़िलाफ़ हम अपनी लड़ाई जीत सकते हैं, जिनके पीछे समूची सरकारी मशीनरी खड़ी है? क्या हम अपने संघर्ष की सफलता के लिए चुनावी पार्टियों से जुड़ी केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों पर भरोसा कर सकते हैं? ऐसे भरोसे से आपको अब तक क्या हासिल हुआ है? क्या हमें अपने मज़दूर साथियों के समर्थन के लिए दलाल ट्रेडयूनियनों की नौकरशाही को 'बाई-पास' करके सीधे मज़दूरों के पास नहीं जाना चाहिए? हम मारुति सुज़ुकी के संघर्षरत साथियों से अपील करेंगे कि वे इन सवालों पर सोचें!

'जज और जेलर तक उनके...सभी अफसर उनके'

बेर्टोल्ट ब्रेष्ट के एक नाटक के गीत की ये पंक्तियाँ आज एकदम मौजूँ हैं। एक अन्य भ्रम है जिसका असर कुछ साथियों पर बना हुआ है। वह है क़ानूनी भ्रम। हालाँकि अधिकतर मज़दूर साथी इस बात को समझने लगे हैं कि अपने गिरफ़्तार साथियों की रिहाई से लेकर बर्ख़ास्त मज़दूरों की बहाली के सवाल तक, क़ानूनी लड़ाई की एक सीमा है, लेकिन फिर भी कुछ साथियों में यह उम्मीद बनी हुई है कि श्रम न्यायालय में चल रहे मुक़दमे के रास्ते कुछ हो सकता है। पिछले तीन दशकों का अनुभव साफ़ तौर पर बताता है कि मज़दूरों के पक्ष को श्रम न्यायालयों में चलने वाले क़ानूनी संघर्षों में तभी विजय मिली है, जब इन क़ानूनी संघर्षों को बाहर चलने वाले आन्दोलनात्मक संघर्षों का समर्थन प्राप्त हुआ है। **हमें श्रम न्यायालय में अपने पक्ष को लगातार मज़बूती के साथ रखते रहना होगा, लेकिन यह पर्याप्त नहीं है। जब तक आप अपनी कारख़ाना-पारीय और सेक्टर-पारीय इलाक़ाई एकता की शक्ति के बूते प्रशासन और न्यायपालिका को अपनी बात सुनने के लिए मजबूर नहीं करेंगे तब तक श्रम न्यायालय में चलने वाले संघर्ष को भी किसी मुकाम तक नहीं पहुँचाया जा सकता है। इसलिए क़ानूनी संघर्ष को आपके जुझारू आन्दोलनात्मक वर्ग संघर्ष का साथ मिलना ही चाहिए। इस सवाल पर भी हम मारुति सुज़ुकी के संघर्षरत साथियों से सोचने की अपील करते हैं।**

मारुति सुज़ुकी के मज़दूर आन्दोलन के मौजूदा कार्यभार

'मज़दूर बिगुल' इस आन्दोलन के आरम्भ से ही इस बात को कहता रहा है कि मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों के आन्दोलन को एक इलाक़ाई आन्दोलन और उभार का रूप दिया जा सकता है और दिया जाना चाहिए। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि यह आज हमारे आन्दोलन के विजय की पूर्वशर्त बन गया है। आज हमारे सामने अपने आन्दोलन को एक व्यापक रूप देने के लिए कुछ ठोस कार्यभार हैं।

सबसे अहम काम है, गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा-बावल से लेकर भिवाड़ी और खुशखेड़ा के औद्योगिक क्षेत्र के मज़दूरों तक अपने संघर्ष और एकता के सन्देश को ले जाया जाये; उन्हें जोड़ा जाये और एक इलाक़ाई वर्ग एकजुटता के आधार पर मज़दूरों का एक इलाक़ाई संगठन और आन्दोलन खड़ा किया जाये। इस एकता के बग़ैर मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों का आन्दोलन शायद ही अपनी जीत के मुकाम तक पहुँच पाये। यहाँ यह स्पष्ट कर देना भी ज़रूरी है कि यह एकता महज़ जारी आन्दोलन को विजय तक पहुँचाने तक ही सीमित नहीं रहेगी। इस आन्दोलन के बाद भी यह ज़रूरी होगा कि इस पूरे इलाक़े के सभी मज़दूरों की साझा माँगों को चिन्हित किया जाये और इन माँगों के आधार पर एक साझा माँगपत्रक तैयार किया जाय; इस माँगपत्रक के पक्ष में समूची मज़दूर आबादी का समर्थन जुटाया जाये और उसके आधार पर एक दूरगामी संघर्ष की तैयारी की जाये; क्योंकि इस पूरे क्षेत्र में मज़दूरों के शोषण और दमन-उत्पीड़न का जो कुचक्र हरियाणा सरकार के सहयोग-समर्थन से पूँजीपति वर्ग ने चला रखा है, वह बन्द नहीं होने वाला है; और इसीलिए आज मारुति सुज़ुकी में यह मसला सामने आया है, कल यह अन्य कारख़ानों में भी सामने आयेगा ही आयेगा। ऐसे में, अगर हम एक इलाक़ाई संगठन और एकता कायम कर लेते हैं, तो हर बार हमें अपने संघर्ष की शुरुआत शून्य से नहीं करनी होगी! हमारे पास अपनी व्यापक इलाक़ाई एकजुटता का हथियार मौजूद होगा जिससे कि हम पूँजी की संगठित ताक़तों के हमलों के ख़िलाफ़ लड़ सकेंगे।

दूसरा अहम कार्यभार है तमाम चुनावी पार्टियों से सम्बद्ध केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों के असली चरित्र को समझना और समूचे मज़दूर वर्ग में इनका भण्डाफोड़ करना। **मज़दूर आन्दोलन का जितना नुकसान दलालों ने किया है, उतना तो मालिकान, प्रबन्धन और सरकार ने भी नहीं किया है। अपने जयचन्दों, विभीषणों और मीर जाफरों से निपटे बग़ैर हम अपनी लड़ाई कतई नहीं जीत सकते।** आज मज़दूर आन्दोलन को क्रान्तिकारी राजनीतिक नेतृत्व देने का काम क्रान्तिकारी संगठन ही कर सकते हैं। मज़दूरों को इन दलाल ट्रेड यूनियनों से स्वतन्त्र अपनी ट्रेड यूनियनें बनानी होंगी और क्रान्तिकारी शक्तियों को इन यूनियनों से जुड़ना होगा। कुछ लोग यह कह रहे हैं कि बिना किसी राजनीतिक संगठन और क्रान्तिकारी नेतृत्व के "स्वतन्त्र-स्वायत्त" ट्रेड यूनियनें खड़ी की जानी चाहिए! हमें कम-से-कम सोनू गुर्जर और शिवकुमार के त्रासद अनुभव के बाद यह समझ लेना चाहिए कि बिना राजनीतिक नेतृत्व और क्रान्तिकारी कार्यक्रम के कोई भी ट्रेड यूनियन आन्दोलन वैसा ही होगा जैसे कि सिर के बिना आदमी! जब हम स्वतन्त्र क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियनों को खड़ा करने का आह्वान करते हैं तो उसका अर्थ यह नहीं कि बिना किसी क्रान्तिकारी राजनीतिक नेतृत्व के ट्रेड यूनियनें बनायी जानी चाहिए; हमारा अर्थ क्रान्तिकारी राजनीति से "स्वतन्त्र" ट्रेड यूनियनें खड़ी करना नहीं है! हमारा अर्थ है चुनावी पार्टियों से सम्बद्ध दलाल केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संघों से स्वतन्त्र क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियनें खड़ी करना। यह समझना बेहद ज़रूरी है कि मज़दूर वर्ग की विचारधारा "मज़दूरवाद" नहीं है; मज़दूर वर्ग की विचारधारा मार्क्सवाद-लेनिनवाद है। हर वर्ग को हिरावल की ज़रूरत होती है, और मज़दूर वर्ग के आन्दोलन को भी हिरावल की ज़रूरत है। सुरजेवाला, हुड्डा, मोण्टेक, मनमोहन, चिदम्बरम जैसे लोग पूँजीपति वर्ग के हिरावल ही तो हैं! इन "हिरावलों" के बिना पूँजीपति वर्ग का शासन कुछ वर्ष भी नहीं चल सकता! पूँजीपतियों को इनका मार्गदर्शन और निर्देशन प्राप्त न हो, तो वे ऐसी नग्न, बर्बर और खुली लूट मचायेंगे कि जनता सड़कों पर उमड़ पड़ेगी और इस पूरी व्यवस्था को तबाह कर डालेगी, भले ही वह कोई नयी व्यवस्था न बना पाये! इन शातिर पूँजीवादी राजनीतिज्ञों के निर्देशन में ही पूँजीपति वर्ग शासन करता है और ये ही उसके हिरावल हैं! स्पष्ट है कि जब पूँजीपति वर्ग अपने हिरावल के बिना शासन नहीं करता तो क्या मज़दूर वर्ग अपने हिरावल के बिना पूँजीवादी व्यवस्था के ख़िलाफ़ लड़ सकता है? क्या वर्ग समाज के पूरे इतिहास में किसी भी वर्ग ने अपने हिरावल के बिना संघर्ष या शासन किया है? नहीं! लेकिन कुछ लोग आज मज़दूर वर्ग की विचारधारा को अपनाने की बजाय मध्यमवर्गीय "मज़दूरवाद" का प्रचार कर रहे हैं, जिससे पूरे आन्दोलन को नुकसान ही होगा। आज इस ख़तरनाक रुझान को भी मज़दूरों को समझना होगा!

तीसरा अहम कार्यभार जो आज मारुति सुज़ुकी के मज़दूर आन्दोलन के सामने खड़ा है, वह है उन ठेका मज़दूरों और अप्रेण्टिसशिप पर काम करने वाले मज़दूरों से फिर से सम्पर्क साधना जो इस आन्दोलन से फिलहाली तौर पर कट गये हैं। याद रहे कि इन मज़दूरों ने आन्दोलन के प्रथम चरण में, यानी 18 जुलाई से पहले, बेहद जुझारू और शानदार भूमिका निभायी थी। ये मज़दूर आज बिखर गये हैं। हो सकता है कि वे अन्य कारख़ानों में भी काम करने लगे हों। लेकिन फिर भी हमें उनके सहयोग-समर्थन को सुनिश्चित करना होगा। हमें यह बताना होगा कि यह कम्पनी की एक चाल है कि वह उन्हें 'होल्ड' पर रखकर आन्दोलन से दूर कर रही है। वे अगर आन्दोलन में शिरकत न भी करें, तो इस बात की कम ही उम्मीद है, कि कम्पनी उन्हें स्थायी मज़दूर के तौर पर बहाल करेगी। कम्पनी का मकसद है कि वह अपने श्रमिकों की बड़ी तादाद को बाहर कर नयी श्रमशक्ति की भरती करे, जिसे वह दबाकर रख सके। अगर वह कुछेक मज़दूरों को काम पर रखती भी है, तो उन्हें गुलामों की तरह खटाया जायेगा, बेइज़्ज़त किया जायेगा और दबाकर रखा जायेगा। ऐसे में, हमें सभी ठेके पर और अप्रेण्टिस के तौर पर काम करने वाले मज़दूरों की भागीदारी को फिर से सुनिश्चित करना होगा।

'मज़दूर बिगुल' का स्पष्ट मानना है कि इन कार्यभारों को पूरा करके हम मारुति सुज़ुकी के मज़दूर आन्दोलन को मज़बूत बना सकते हैं, उसे आगे बढ़ा सकते हैं और उसे जीत के मुकाम तक पहुँचा सकते हैं। हम मारुति सुज़ुकी के अपने सभी संघर्षरत साथियों के जज़्बे और बहादुरी को सलाम करते हैं और उनका आह्वान करते हैं कि वे इस लेख में उठाये गये ज़रूरी सवालों पर सोचें और चर्चा करें। 'मज़दूर बिगुल' इस साहसपूर्ण संघर्ष में हर कदम पर उनके साथ है!

पेरिस कम्यून : पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा (सातवीं किश्त)

आज भारत ही नहीं, पूरी दुनिया के मज़दूर पूँजी की लुटेरी ताक़त के तेज़ होते हमलों का सामना कर रहे हैं, और मज़दूर आन्दोलन बिखराब, ठहराव और हताशा का शिकार है। ऐसे में इतिहास के पन्ने पलटकर मज़दूर वर्ग के गौरवशाली संघर्षों से सीखने और उनसे प्रेरणा लेने की अहमियत बहुत बढ़ जाती है। आज से 141 वर्ष पहले, 18 मार्च 1871 को फ्रांस की राजधानी पेरिस में पहली बार मज़दूरों ने अपनी हुकूमत क़ायम की। इसे पेरिस कम्यून कहा गया। उन्होंने शोषकों की फैलायी इस सोच को ध्वस्त कर दिया कि मज़दूर राज-काज नहीं चला सकते। पेरिस के जाँबाज़ मज़दूरों ने न सिर्फ़ पूँजीवादी हुकूमत की चलती चक्की को उलटकर तोड़ डाला, बल्कि 72 दिनों के शासन के दौरान आने वाले दिनों का एक छोटा-सा मॉडल भी दुनिया के सामने पेश कर दिया कि समाजवादी समाज में भेदभाव, ग़ैर-बराबरी और शोषण को किस तरह ख़त्म किया जायेगा। आगे चलकर 1917 की रूसी मज़दूर क्रान्ति ने इसी कड़ी को आगे बढ़ाया।

मज़दूर वर्ग के इस साहसिक कारनामे से फ्रांस ही नहीं, सारी दुनिया के पूँजीपतियों के कलेजे काँप उठे। उन्होंने मज़दूरों के इस पहले राज्य का गला घोंट देने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया और आख़िरकार मज़दूरों के कम्यून को उन्होंने ख़ून की नदियों में डुबो दिया। लेकिन कम्यून के सिद्धान्त अमर हो गये। पेरिस कम्यून की हार से भी दुनिया के मज़दूर वर्ग ने बेशक़ीमती सबक़ सीखे। पेरिस के मज़दूरों की क़ुर्बानी मज़दूर वर्ग को याद दिलाती रहती है कि पूँजीवाद को मटियामेट किये बिना उसकी मुक्ति नहीं हो सकती।

'मज़दूर बिगुल' के मार्च 2012 अंक से हमने दुनिया के पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा की शुरुआत की है, जो अगले कई अंकों में जारी रहेगी।

इस शृंखला की शुरुआती कुछ किश्तों में हमने पेरिस कम्यून की पृष्ठभूमि के तौर पर जाना कि पूँजी की सत्ता के ख़िलाफ़ मज़दूरों ने किस तरह लड़ना शुरू किया और किस तरह चार्टिस्ट आन्दोलन और 1848 की क्रान्तियों से गुज़रते हुए मज़दूर वर्ग की चेतना और संगठनबद्धता आगे बढ़ती गयी। हमने मज़दूरों की मुक्ति की वैज्ञानिक विचारधारा के विकास और पहले अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर संगठन के बारे में जाना। पिछले अंकों में हमने जाना कि कम्यून की स्थापना कैसे हुई और उसकी रक्षा के लिए मेहनतकश जनता किस प्रकार बहादुरी के साथ लड़ी। हमने यह भी देखा कि कम्यून ने सच्चे जनवाद के उसूलों को इतिहास में पहली बार अमल में कैसे लागू किया और यह दिखाया कि "जनता की सत्ता" वास्तव में क्या होती है। – सम्पादक

वीर कम्यूनार्डों के रक्त से लिखा इतिहास का कड़वा सबक़

1. कम्यून ने जो ऐतिहासिक कदम उठाये, उन्हें लेकर वह बहुत दूर तक आगे नहीं चल सका। अपने जन्म से ही वह दुश्मनों से घिरा हुआ था, जो उसे नेस्तनाबूद करने पर तुले हुए थे। 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' के शब्दों के अनुसार बूढ़े यूरोप को "कम्युनिज़्म का जो हौवा" 1848 में ही सता रहा था, उसे साक्षात पेरिस में खड़ा देखकर यूरोप के सभी देशों के पूँजीपतियों के कलेजे दहल उठे थे। कम्यून को कुचलने के लिए सभी प्रतिक्रियावादी ताक़तें एकजुट हो गयी थीं। प्रशा (जर्मनी) के सैनिकों द्वारा कब्ज़ा करवाकर पेरिस को कुचल देने की पूँजीपतियों की पहली कोशिश नाकाम रही क्योंकि जर्मनी का शासक बिस्मार्क इसके लिए तैयार नहीं था। 18 मार्च को उन्होंने दूसरी कोशिश की जिसमें उनकी सेना की हार हुई और पूरी सरकार पेरिस छोड़कर वर्साय भाग चली। थियेर ने पेरिस के साथ सन्धि की बातचीत का दिखावा करके उसके विरुद्ध युद्ध की तैयारियाँ करने का मौक़ा हासिल किया। लेकिन उसकी बची-खुची सेना इस हाल में नहीं थी कि कम्यून का मुक़ाबला कर सके। कम्यूनार्डों की वीरता को देखकर थियेर को यह समझ में आ गया था कि पेरिस के प्रतिरोध को चूर कर पाना उसकी सामरिक प्रतिभा और सैन्य बल के बूते की बात नहीं है। इसलिए वह बिस्मार्क के भरोसे था।

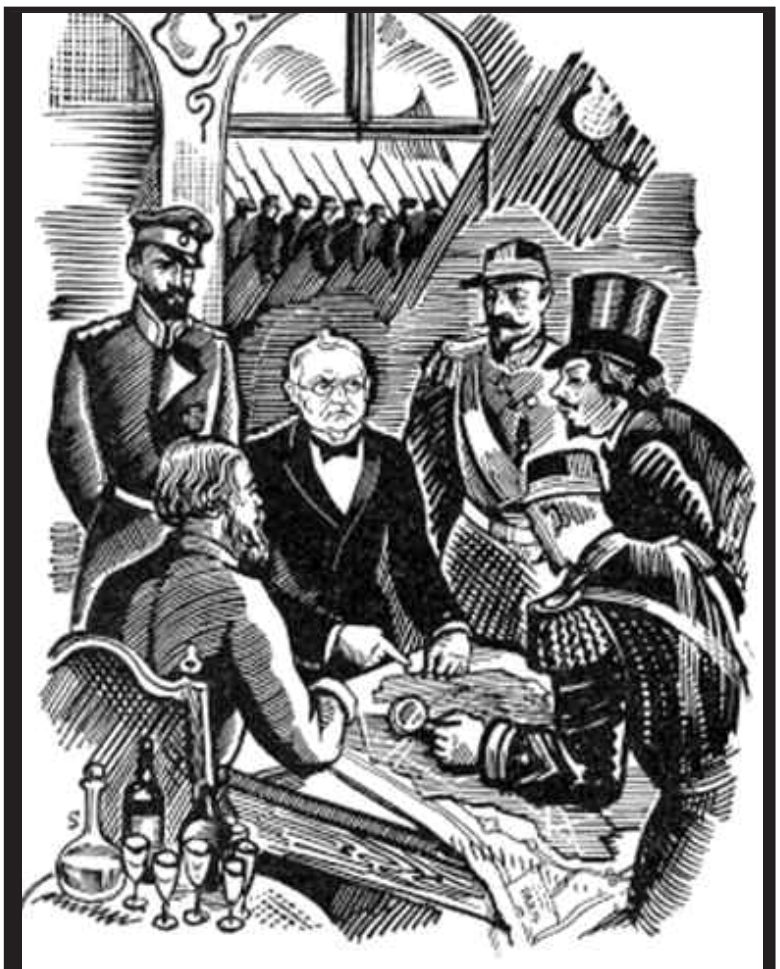

इसी दरम्यान वर्साय में थियेर और उसकी प्रतिक्रियावादी सरकार प्रशियाई अधिकारियों की सहायता से पेरिस कम्यून पर आक्रमण करने की योजना बना रही थी। लेकिन थियेर धोखाधड़ी की भाषा में बातें कर रहा था। 21 मार्च को, जब तक उसकी सेना नहीं बन पायी थी, थियेर ने राष्ट्रीय सभा में घोषणा की: "चाहे कुछ हो जाये, मैं पेरिस के विरुद्ध सेना नहीं भेजूँगा।"

कम्यूनार्ड भी अपनी तैयारी कर रहे थे। सड़कों पर बैरिकेड खड़े कर दिये गये। स्त्रियों और पुरुषों ने मिलकर इन्हें खड़ा किया और उन पर मोर्चा सँभाल लिया।

2. कार्ल मार्क्स यह स्पष्ट समझ रहे थे कि पेरिस कम्यून को कुचलने के लिये बिस्मार्क की जो प्रशियाई फौजें पेरिस के शहरपनाह के पास ही खड़ी थीं, वे या तो थियेर को मदद करतीं या फिर खुद ही पेरिस की ओर कूच कर देतीं। इसलिए वे लगातार राय दे रहे थे कि पेरिस कम्यून की जीत को पुख़्ता करने के लिए ज़रूरी है कि पेरिस की कामगारों की सेना पेरिस में प्रतिक्रान्ति की हर कोशिश को कुचलकर बिना रुके वर्साय की ओर कूच कर जाये जो थियेर सरकार के साथ ही पेरिस के सभी रईसों का पनाहगाह बना हुआ था। उनका कहना था कि इससे कम्यून की जीत और पुख़्ता हो जाती और सर्वहारा क्रान्ति पूरे देश में फैलायी जा सकती थी। बाद में यह सामने आया कि थियेर के पास उस समय कुल जमा 27 हजार पस्तहिम्मत फ़ौजी थे, जिन्हें पेरिस के एक लाख 'नेशनल गार्ड्स' चुटकी बजाते धूल चटा सकते थे।

3. लेकिन पेरिस कम्यून के बहादुर कम्यूनार्ड यहीं पर चूक गये। उन्होंने पेरिस में तो मज़दूर वर्ग की फ़ौलादी सत्ता क़ायम की और बुर्जुआ वर्ग के साथ कोई रू-रियायत नहीं बरती, लेकिन वे भूल गये कि पेरिस के बाहर थियेर के पीछे सिर्फ़ फ्रांस के ही नहीं, बल्कि पूरे यूरोप के प्रतिक्रियावादी एकजुट हो रहे हैं। मार्क्स ने कम्यून के प्रमुख नेताओं–फ्रांकेल और वाल्यां को आगाह किया कि पेरिस को घेरने के लिए थियेर और प्रशियाइयों के बीच सौदेबाज़ी हो सकती है, इसलिए प्रशियाई लश्करों को पीछे धकेलने के लिए मोंतमार्त्र पहाड़ी की उत्तरी पाख की किलेबन्दी कर लेनी चाहिये। मार्क्स इस बात को लेकर बहुत चिन्तित थे कि कम्यून वाले अपने को केवल बचाव तक सीमित रखकर बेशक़ीमती समय गँवा रहे हैं और वर्साय वालों को अपनी सेना मज़बूत कर लेने का मौक़ा दे रहे हैं। उन्होंने कम्यूनार्डों को लिखा कि प्रतिक्रियावाद की माँद को ध्वस्त कर डालिये, फ्रांसीसी राष्ट्रीय बैंक के ख़ज़ाने ज़ब्त कर लीजिये और क्रान्तिकारी पेरिस के लिए प्रान्तों का समर्थन हासिल कीजिये।

मज़दूरों के पहले राज की रक्षा के लिए पेरिस के तमाम मेहनतकश जीजान से लड़े। कम्यून के हर क़दम पर डटकर सक्रिय रही स्त्रियों ने बैरिकेडों की लड़ाई में भी बढ़चढ़कर हिस्सा लिया। कई बार जब उनके पुरुष साथी दुश्मन के हमलों के आगे हताश होने लगते थे तो स्त्रियाँ आगे बढ़कर उनका हौसला बढ़ाती थीं।

दस हज़ार मज़दूर औरतें पेरिस में लड़ाई के मोर्चे पर डटी थीं। इसके अलावा हज़ारों दूसरी औरतें प्रतिरक्षा के दूसरे कामों में, साजो-सामान की आपूर्ति, घायलों की तीमारदारी आदि में लगी हुई थीं।

4. लेकिन कम्यून ने वर्साय की ओर से उपस्थित ख़तरे को कम करके आँकने की भूल की। उसने न सिर्फ़ उस पर हमला करने की कोशिश नहीं की, बल्कि अपनी प्रतिरक्षा करने के लिए भी गम्भीरता से तैयारी नहीं की। 27 मार्च 1871 से ही वर्साय की सेना के अग्रिम मोर्चों और पेरिस के चारों ओर के परकोटों के बीच रह-रहकर गोलीबारी होने लगी थी। 2 अप्रैल को कम्यून की सेना की एक टुकड़ी जब कूर्बेवाई की ओर जा रही थी तो उस पर हमला किया गया। थियेर की सेना ने जिन सैनिकों को बन्दी बनाया उन्हें तुरन्त गोली मार दी गयी। अगले दिन, नेशनल गार्ड के दबाव में, कम्यून ने आख़िरकार वर्साय के विरुद्ध तीन ओर से हमला बोला। लेकिन कम्यून की बटालियनों के ज़बर्दस्त उत्साह के बावजूद, गम्भीर राजनीतिक और सैन्य तैयारी के अभाव के कारण देर से हुए इस हमले को हार का सामना करना पड़ा। इस हार से कम्यून को बहुत से हताहतों के रूप में भारी क़ीमत चुकानी पड़ी। उसके दो सक्षम कमाण्डर फ्लोरेंस और दूवाल को वर्साय की सेना ने बन्दी बनाने के बाद मौत के घाट उतार दिया।

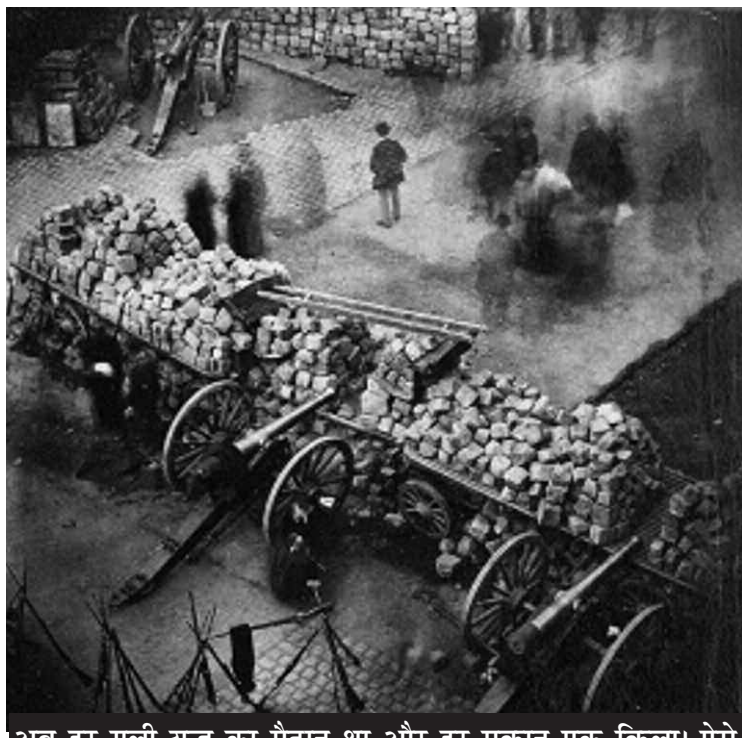

अब हर गली युद्ध का मैदान था और हर मक़ान एक क़िला। ऐसे भीषण हमले के आगे थके-माँदे कम्यूनार्ड पीछे हटने को मजबूर थे जिसमें औरतों और बच्चों तक की जान नहीं बख्शी गयी। एक सड़क पर मोर्चा बाँधकर लड़ते हुए कम्युनार्ड।

कम्यूनार्डों ने डटकर मुक़ाबला किया। लेकिन हमलावर फ़ौजों के आगे उन्हें पीछे हटना पड़ा और पेरिस के एक छोटे-से हिस्से में उन्होंने आख़िरी मोर्चा लिया।

भारी तोपखाने से लैस थियेर की सेना को रोकने के लिए पीछे हटते हुए कम्युनार्डों ने कई इमारतों को आग लगा दी। बुर्जुआ वर्ग के लेखक इस पर काफ़ी शोर मचाते रहे हैं और कम्युनार्डों को "असभ्य" और "आगज़नी पर उतारू पागल भीड़" बताते रहे हैं। मार्क्स ने ऐसे लोगों को करारा जवाब देते हुए लिखा था: "जब थियेर ने छह हफ़्तों तक पेरिस पर बमबारी की, यह कहते हुए कि वह केवल उन मकानों को आग लगाना चाहता है जिनमें लोग थे, तो क्या वह आगज़नी नहीं थी? – युद्ध में आग भी एक हथियार होता ही है। दुनिया की हर लड़ाई में सेनाएँ इमारतों को आग लगाती रही हैं। लेकिन अपने मालिकों के ख़िलाफ़ ग़ुलामों के युद्ध में, जो इतिहास में एकमात्र न्यायपूर्ण युद्ध है, इसे ग़लत बताया जाता है! कम्यून ने आग का इस्तेमाल केवल अपने बचाव के लिए किया। ...उन्होंने पहले ही चेतावनी दे दी थी कि अगर उन्हें मजबूर किया गया तो वे पेरिस के ध्वंसावशेषों में अपने को दफ़्न कर देंगे लेकिन हटेंगे नहीं। वे जानते थे कि उनके दुश्मनों के लिए पेरिस के लोगों की जान की कोई क़ीमत नहीं है लेकिन उन्हें पेरिस की अपनी इमारतें बहुत प्यारी हैं।"

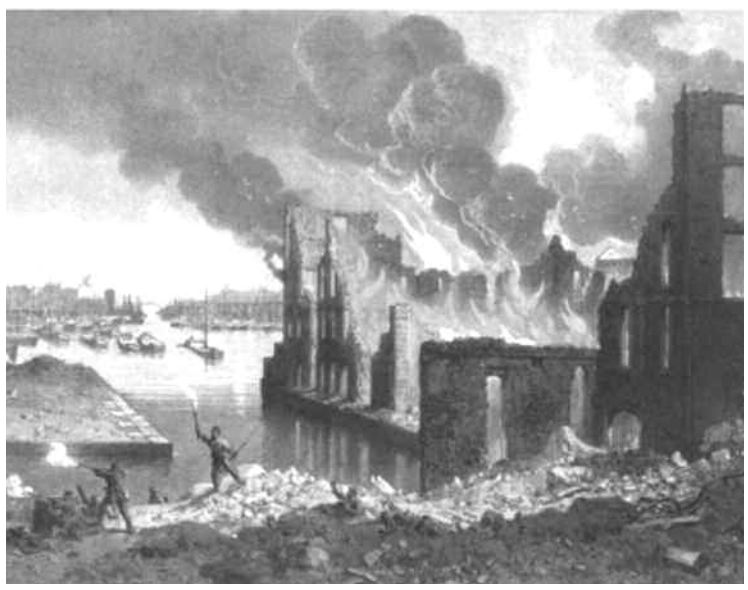

5. वैज्ञानिक समाजवाद के सिद्धान्तों पर गठित एक पार्टी का अभाव उन ऐतिहासिक घड़ियों में कम्यून की गतिविधियों को बुरी तरह प्रभावित कर रहा था। इण्टरनेशनल की फ्रांस शाखा सर्वहारा वर्ग का राजनीतिक हरावल बनने से चूक गयी थी। उसके अन्दर मार्क्सवादी विचारधारा के लोगों की संख्या भी बहुत कम थी। फ्रांसीसी मज़दूरों में सैद्धान्तिक पहलू बहुत कमज़ोर था। उस समय तक 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र','फ्रांस में वर्ग संघर्ष', 'पूँजी' आदि मार्क्स की प्रमुख रचनाएँ अभी फ्रांसीसी भाषा में प्रकाशित भी नहीं हुई थीं। कम्यून के नेतृत्व में बहुतेरे ब्लांकीवादी और प्रूधोंवादी शामिल थे, जो मार्क्सवादी सिद्धान्तों से या तो परिचित ही नहीं थे, या फिर उसके विरोधी थे। आम सर्वहाराओं द्वारा आगे ठेल दिये जाने पर उन्होंने सत्ता हाथ में लेने के बाद बहुतेरी चीज़ों को सही ढंग से अंजाम दिया और आने वाली सर्वहारा क्रान्तियों के लिए बहुमूल्य शिक्षाएँ दीं, पर अपनी राजनीतिक चेतना की कमी के कारण उन्होंने बहुतेरी ग़लतियाँ भी कीं। कम्यूनार्डों की एक बड़ी ग़लती यह थी कि वे दुश्मन की शान्तिवार्ताओं की धोखाधड़ी के शिकार हो गये और दुश्मन ने इस बीच युद्ध की तैयारियाँ मुकम्मिल कर लीं। जैसा कि मार्क्स ने लिखा है:"जब वर्साय अपने छुरे तेज़ कर रहा था, तो पेरिस मतदान में लगा हुआ था; जब वर्साय युद्ध की तैयारी कर रहा था तो पेरिस वार्ताएं कर रहा था।"दुश्मन का पूरी तरह सफाया न करना, वर्साय पर हमला न करना, और क्रान्ति को पूरे देश में न फैलाना कम्यून वालों की सबसे बड़ी भूल थी और सच यह है कि नेतृत्व में मार्क्सवादी विचारधारा के अभाव के चलते यह गलती होनी ही थी।

नगर के जलते खण्डहरों के बीच लड़ते हुए हज़ारों कम्यूनार्डों को क़ैद कर लिया गया। हज़ारों को वहीं मौत के घाट उतार दिया गया।

6. बेहद कठिन हालात के बावजूद और मेहनतकशों के नये राज्य के सामने उपस्थित अनगिनत कामों में लगे रहने के साथ ही कम्यूनार्डों ने दुश्मन का मुक़ाबला करने की तैयारियाँ भी शुरू कर दीं। दास-स्वामियों के विरुद्ध दासों के इस युद्ध में पेरिस की मेहनतकश जनता जीजान से लड़ने को तैयार थी। 1871 की मई आते-आते थियेर के सैनिकों ने पेरिस पर हमला बोल दिया। वर्साय के लुटेरों की भाड़े की सेना का कम्युनार्डों ने जमकर मुकाबला किया और एकबारगी तो उसे पीछे भी धकेल दिया, पर वर्साय की सेना पेरिस की घेरेबन्दी करके गोलाबारी करती रही। इसी दौरान प्रशा ने फ्रांस के बन्दी बनाये गये दसियों हज़ार सैनिकों को रिहा कर थियेर की भारी मदद की थी। थियेर की सेना दक्षिणी मोर्चे के दो किलों को जीतकर पेरिस की दहलीज़ पर पहुँच गयी। प्रशा की सेना ने भी आगे बढ़ने में उनकी परोक्ष मदद की। जो बुर्जुआ पेरिस में रह गये थे, उन्होंने वर्साय तक यह सूचना पहुँचा दी कि शहर में किन जगहों पर प्रतिरक्षा कमज़ोर है, और अरक्षित दरवाज़ों से फ़ौजें भीतर घुस आयीं। 21 मई 1871 को वर्साय का दस्युदल अपने कसाइयों के छुरों के साथ पेरिस में घुस पड़ा। शहर की सड़कों-चौराहों पर और विशेषकर मज़दूर बस्तियों में घमासान युद्ध हुआ। आख़िरकार, 8 दिनों के बेमिसाल बहादुराना संघर्ष के बाद पेरिस के बहादुर सर्वहारा योद्धा पराजित हो गये।

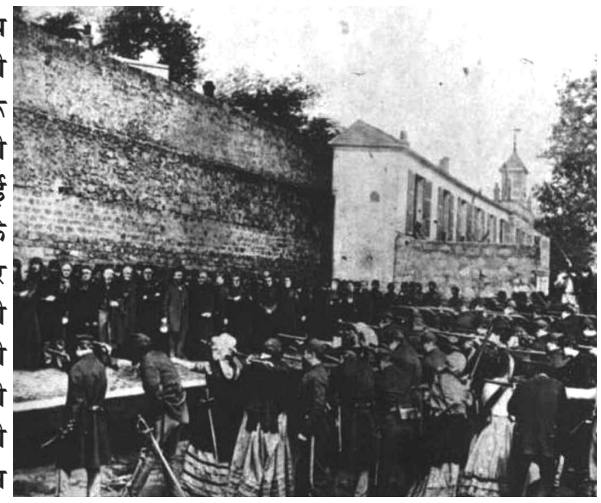

कई हज़ार लोगों को जिनमें बच्चे, बीमार और बूढ़े थे, हाँककर खुली जगहों में लाया गया और गोली मार दी गयी। सैकड़ों कम्युनार्डों को एक दीवार के सहारे खड़ा करके गोली मारी जा रही है।

और पेरिस के रईस, जिनमें से कई अब लौट आये थे, सड़क की पटरियों पर खड़े होकर इस घृणित तमाशे को देख रहे थे और इस जीत के लिए अपनी पीठ थपथपा रहे थे।

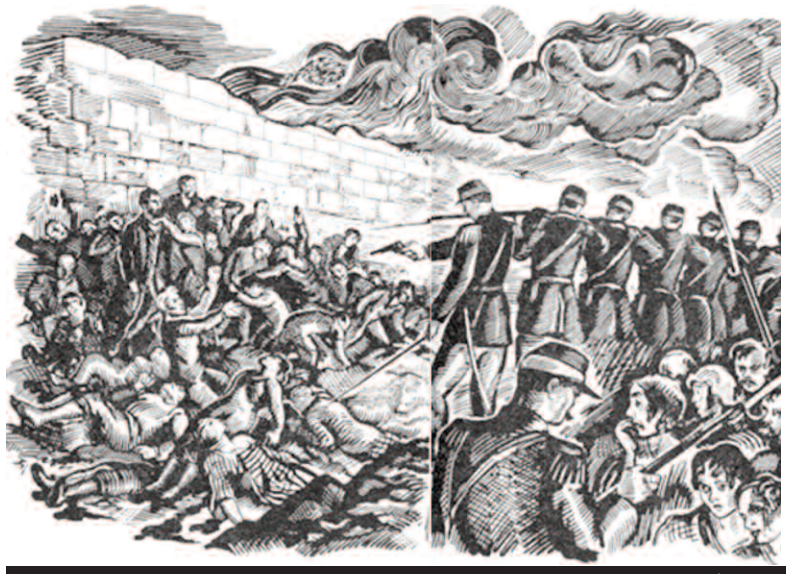

हज़ारों की संख्या में कम्यूनार्डों को घेरकर पेरे लाशेज़ क़ब्रगाह और दूसरी दर्जनभर जगहों पर ले जाकर गोलियों से भून दिया गया। दीवारों के साथ खड़ा कर निडर भीड़ पर जब सेना गोलियाँ बरसाती तो, पेरिस के मज़दूरों का हत्यारा, ज़नरल गैलीफ़ेट वहाँ खड़ा होकर तमाशा देखता था। लाशों के बड़े-बड़े टीले बन गये, जिनमें वे भी थे जिनकी अभी मौत नहीं हुई थी...

"कम्यूनार्डों की दीवार" का एक हिस्सा पेरिस में अभी भी मौजूद है, उस पर बनाये गये वीर कम्यूनार्डों के चेहरे पूँजीवादी शासन को चुनौती भी हैं और कम्यून के शहीदों का स्मारक भी है। यह सर्वहाराओं की आने वाली पीढ़ियों को कम्यून की इस शिक्षा की याद दिलाता रहता है कि भागते हुए डकैतों का अन्त तक पीछा किया जाना चाहिये, पानी में डूबते चूहों को तैरकर किनारे आने का मौक़ा नहीं देना चाहिये, दुश्मन को फिर से दम नहीं हासिल करने देना चाहिये और तब तक चैन की साँस नहीं लेनी चाहिये जब तक पूँजीवादी दुश्मन कहीं किसी भी कोने-अँतरे में जीवित हो।

7. पागलपन से भरी वर्साय सेना की हर टुकड़ी जल्लादों का गिरोह थी, जो कम्यून से सहानुभूति रखने का सन्देह होते ही हर व्यक्ति को फ़ौरन मौत के घात उतार देती थी। इस ख़ूनी सप्ताह में 30,000 कामगार कम्यून की रक्षा करते हुए शहीद हो गये। विजयी प्रतिक्रियावादियों ने सड़कों पर दमन का जो ताण्डव किया, उसकी इतिहास में कोई मिसाल नहीं मिलती। नागरिकों को कतारों में खड़ा किया जाता था और हाथों के घट्ठों को देखकर कामगारों को अलग करके गोली मार दी जाती थी। गिरफ़्तार लोगों के अतिरिक्त चर्च में शरण लिये हुए लोगों और अस्पतालों में घायल पड़े सैनिकों को भी गोली मार दी गयी। उन्होंने बुजुर्ग मज़दूरों को यह कहते हुए गोली मार दी कि 'इन्होंने बार-बार बग़ावतें की हैं और ये खाँटी अपराधी हैं।' औरत-मज़दूरों को यह कहकर गोली मार दी गयी कि ये "स्त्री अग्नि बम" हैं और यह कि ये "सिर्फ़ मरने के बाद ही" औरतों जैसी लगती हैं। मज़दूरों के बच्चों को यह कहकर गोली मार दी गयी कि "ये बड़े होकर बाग़ी बनेंगे।" मज़दूरों के क़त्लेआम का सिलसिला पूरे जून भर चलता रहा जिसमें कम से कम 20,000 लोग और मारे गये। पेरिस लाशों से पट गया। सैन नदी ख़ून की नदी बन गयी। कम्यून ख़ून के समन्दर में डुबो दिया गया। कम्यूनार्डों के रक्त से इतिहास ने मज़दूरों के लिए यह कड़वी शिक्षा लिखी कि सर्वहारा वर्ग को क्रान्ति को अन्त तक चलाना होगा। सत्ता न तो शान्तिपूर्वक मिलेगी, न ही शान्तिपूर्वक उसकी हिफ़ाज़त की जा सकेगी।

...अगले अंक में जारी

कैसा है यह लोकतन्त्र और यह संविधान किनकी सेवा करता है? *(तेरहवीं किश्त)*

● आलोक रंजन

अपरिहार्य कारणों से पिछले कुछ अंकों में इस लेख की किश्तें नहीं दी जा सकीं। इस अंक से इस धारावाहिक लेख का प्रकाशन फिर शुरू किया जा रहा है। – सम्पादक

मूलभूत अधिकार: दावे और हक़ीक़त

इस श्रृंखला में अब तक हमने देखा कि किस प्रकार एक निहायत ही ग़ैर-जनवादी तरीक़े से चुनी गयी संविधान सभा ने भारतीय संविधान का निर्माण किया। हमने यह भी देखा कि इस संविधान के लगभग सत्तर फ़ीसदी प्रावधान औपनिवेशिक क़ानून 'गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट 1935' से हूबहू या फिर चन्द मामूली शाब्दिक बदलावों के साथ उठा लिये गये थे। बाकी तीस फ़ीसदी प्रावधान भी विभिन्न देशों के बुर्जुआ संविधानों और परम्पराओं से उधार लिये गये थे। इन प्रावधानों को भी ग़ौर से देखने पर हम पाते हैं कि इनमें स्वाधीनता संघर्ष के दौरान किये गये वायदों और जनता की आकांक्षाओं और भावनाओं को अभिव्यक्ति देने के बजाय आज़ादी मिलने के बाद सत्तारूढ़ देशी पूँजीपति वर्ग के शासन को मज़बूती प्रदान करने और लोकलुभावन जुमलों का इस्तेमाल करके जनता से अपने शासन के प्रति सहमति लेने की कोशिश ज़्यादा दिखती है। ज़ाहिर है कि देशी शासक वर्ग स्वाधीनता संघर्ष के दौरान किये गये लंबे-चौड़े वायदों से खुले आम वायदाख़िलाफ़ी कर नग्न तानाशाही नहीं क़ायम कर सकता था। इसलिए संविधान में कुछ ऐसे प्रावधान डाले गये जिनको प्रथमदृष्टया देखने पर लोकतंत्र का वहम हो और जिनकी आड़ में संविधान की जनविरोधी अन्तर्वस्तु छिपायी जा सके। इसकी एक बानगी हमने संविधान की प्रस्तावना की चर्चा के दौरान देखी कि किस प्रकार संविधान की शुरुआत लच्छेदार और मनमोहक शब्दों से होती है। लोकतंत्र का आवरण बनाये रखने के लिए सबसे महत्वपूर्ण प्रावधान संविधान के भाग तीन में मूलभूत अधिकारों के रूप मे मौजूद हैं।

मूलभूत अधिकार वे अधिकार होते हैं जो देश के हर नागरिक को एक नागरिक होने की हैसियत से प्राप्त होते हैं और जिनका हनन होने की सूरत में कोई भी व्यक्ति न्यायालय में गुहार लगा सकता है। भारतीय संविधान में मूलभूत अधिकार अमेरिका के मशहूर 'बिल ऑफ राइट्स' से प्रेरित हैं। ये अधिकार हैं: समता का अधिकार (अनु. 14-18), स्वातंत्र-अधिकार (अनु. 19-22), शोषण के ख़िलाफ़ अधिकार (अनु. 23-24), धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार (अनु. 25-28), संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (अनु. 28-30) और संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनु. 32-35)। लेकिन जब हम मूलभूत अधिकार सम्बन्धी प्रावधानों की तफ़सीलों में जाते हैं तो ये ऊँची दुकान और फीके पकवान जैसा भाव पैदा करते हैं।

संविधान प्रदत्त मूलभूत अधिकारों का मूल स्वरूप राजनीतिक है। भारतीय संविधान आर्थिक समानता, आर्थिक स्वतंत्रता और आर्थिक शोषण से मुक्ति से सम्बन्धित मूलभूत अधिकारों की कोई गारण्टी नहीं देता। संविधान के मूलभूत अधिकारों से सम्बन्धित भाग तीन में संसाधनों के असमान बँटवारे और उनके निजी हाथों में संक्रेन्द्रण के विरुद्ध अधिकार, काम का अधिकार, काम की न्यायसंगत और मनोचित दशाओं का अधिकार, स्वास्थ्य और पोषणयुक्त भोजन का अधिकार, श्रमिकों के लिए निर्वाह मज़दूरी का अधिकार, समान श्रम के लिए समान मज़दूरी, नि:शुल्क विधिक सहायता का अधिकार, जैसे बेहद बुनियादी अधिकारों का ज़िक्र तक नहीं है। हालाँकि इनमें से कुछ की चलताऊ चर्चा संविधान के चौथे भाग में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के रूप में की गयी है, परन्तु ये नीति निर्देशक तत्व राज्य के लिए विधिक रूप से बाध्यताकारी नहीं हैं और नागरिकों को इनका उल्लंघन होने की सूरत में न्यायालय जाने का भी कोई अधिकार नहीं है। ऐसे में ये नीति निर्देशक तत्व जनता के अधिकारों की दृष्टि से भद्दे मज़ाक के समान हैं।

भारतीय नागरिकों को प्रदत्त मूलभूत अधिकार न सिर्फ़ नाकाफ़ी हैं बल्कि जो चन्द राजनीतिक अधिकार संविधान द्वारा दिये भी गये हैं उनको भी तमाम शर्तों और पाबन्दियों भरे प्रावधानों से परिसीमित किया गया है। उनको पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है मानो संविधान निर्माताओं ने अपनी सारी विद्वता और क़ानूनी ज्ञान जनता के मूलभूत अधिकारों की हिफ़ाज़त करने के बजाय एक मज़बूत राज्यसत्ता की स्थापना करने में में झोंक दिया हो। इन शर्तों और पाबन्दियों की बदौलत आलम यह है कि भारतीय राज्य को जनता के मूलभूत अधिकारों का हनन करने के लिए संविधान का उल्लंघन करने की ज़रूरत ही नहीं है। इसके अतिरिक्त संविधान में एक विशेष हिस्सा (भाग 18) आपातकाल सम्बन्धी प्रावधानों का है जो राज्य को आपातकाल घोषित करने का अधिकार देता है। आपातकाल की घोषणा होने के बाद नागरिकों के औपचारिक अधिकार भी निरस्त हो जाते हैं और राज्य सत्ता को लोकतंत्र का लबादा ओढ़ने की भी ज़रूरत नहीं रहती। ग़ौरतलब है कि आज़ादी के बाद से अब तक कुल चार बार आपातकाल घोषित किया जा चुका है (तीन बार बाह्य कारणों से और एक बार आन्तरिक कारण से)। 1975 में इन्दिरा गाँधी सरकार द्वारा घोषित आन्तरिक आपातकाल नागरिकों के मूलभूत अधिकारों के धड़ल्ले से हनन के लिए कुख्यात है जब 19 महीनों तक संविधानसम्मत तरीके से वस्तुत: तानाशाही क़ायम थी जिसका ज़िक्र आने पर इस संविधान के प्रबल से प्रबल समर्थक भी शर्म से बगलें झाँकने लगते हैं।

आज़ादी के 65 सालों में भारतीय बुर्जुआ राज्य के आचरण पर निगाह डालने से यह बात दिन के उजाले की तरह साफ़ नज़र आती है कि यह राज्य जनता के मूलभूत अधिकारों की हिफ़ाज़त तो दूर अपने काले क़ानूनों और काली करतूतों से इन अधिकारों का खुलेआम हनन करता आया है। भारतीय राज्य जनान्दोलनों के बर्बर दमन, नौकरशाही, पुलिस तंत्र और फौज के घोर जनविरोधी आचरण, कश्मीर और पूर्वोत्तर की परिधि की राष्ट्रीयताओं के उत्पीड़न और हाल में नक्सलवाद के नाम पर देश की सबसे ग़रीब और बदहाल आदिवासी आबादी के ख़िलाफ़ अघोषित युद्ध छेड़ने के लिए पूरी दुनिया में कुख्यात है। इससे भी बड़ी विडम्बना तो यह है कि भारतीय राज्य ने इन काले कारनामों को अंजाम देने के लिए संविधान में ही मौजूद प्रावधानों का इस्तेमाल किया है। यानी कि भारतीय संविधान इस मामले में अनूठा है कि इसके आधार पर निर्मित राज्यसत्ता को ग़ैर-लोकतांत्रिक हरकतें करने और नागरिकों के जनवादी अधिकारों का हरण करने की तरक़ीबें संविधान में ही मौजूद हैं। इस प्रकार भारतीय संविधान लोकतंत्र के आवरण में एक निरंकुश राज्य सत्ता स्थापित करने के मामले में एक मील के पत्थर के समान है। यही वजह है कि तीसरी दुनिया के उत्तर-औपनिवेशिक देशों का बुर्जुआ शासक वर्ग इस संविधान को एक 'रोल-मॉडल' के रूप में देखता है।

मूलभूत अधिकार और उनका माखौल उड़ाती शर्तों और पाबन्दियों की तफ़सीलवार चर्चा हम आगे करेंगे। परन्तु उससे भी बुनियादी पहलू यह है कि जिस प्रकार से भारतीय समाज में पूँजीवादी विकास हुआ है और हो रहा है उसको देखते हुए यह कहना अनुचित न होगा कि अगर ये शर्तें और पाबन्दियाँ संविधान में मौजूद नहीं भी होतीं तो भी नागरिकों के जनवादी अधिकार एक हद तक ही सुरक्षित रह पाते। एक ऐसे समाज में जिसकी सामाजिक-आर्थिक संरचना में ग़ैर-बराबरी, शोषण और उत्पीड़न के तत्व अन्तर्निहित हों उसमें यदि क़ानूनी और संवैधानिक रूप से बराबरी और स्वतंत्रता घोषित भी कर दी जाये तो यह महज़ विधिक बराबरी और स्वतंत्रता होगी। दूसरे शब्दों में, क़ागज़ पर तो सभी नागरिक बराबर और स्वतंत्र होंगे परन्तु हक़ीक़त में लोगों में ग़ैर-बराबरी और स्वामित्व-अधीनता का सम्बन्ध बरकरार रहेगा।

संविधान और क़ानून की किताबों में तो दुनिया के सबसे बड़े धन्नासेठों में एक मुकेश अम्बानी और एक रिक्शा चलाने वाला दोनों बराबर हैं क्योंकि दोनों को समान रूप से मूलभूत अधिकार प्राप्त हैं। लेकिन असल ज़िन्दगी में तो कोई मूर्ख या हद दर्जे का भोला और अज्ञानी व्यक्ति ही इस बात पर यकीन करेगा। अम्बानी जैसे पूँजीपतियों की ख़िदमत में राजनेता से लेकर नौकरशाह तक उनके आगे-पीछे घूमते हैं और वकील से लेकर न्यायाधीश तक उनकी जेबों में होते हैं। दूसरी ओर रिक्शे वाले के अधिकारों का हनन रोज़ाना घण्टे-दर-घण्टे इस व्यवस्था की नुमाइन्दगी करने वाले ही करते हैं। सड़क और चौराहे पर एक कांस्टेबल भी उसके साथ जानवरों सरीखा बर्ताव करता है और वह उसके ख़िलाफ़ कुछ भी नहीं कर पाता है। अव्वलन तो उसे मूलभूत अधिकार जैसी किसी चीज़ के बारे में कुछ पता ही नहीं होता और यदि किसी को अपवादस्वरूप पता भी हो तो उसकी हिफ़ाज़त करने की कुव्वत उसके पास नहीं होती। कमोबेश यह बात देश की अधिकांश मेहनतकश जनता पर लागू होती है।

जिस देश में एक ओर 77 फ़ीसदी आबादी 20 रुपये प्रतिदिन पर गुज़ारा करती हो और दूसरी ओर अरबपतियों की संख्या दुनिया में सबसे अधिक रफ़्तार से बढ़ रही हो वहाँ समानता और स्वतंत्रता जैसे मूलभूत राजनीतिक अधिकार अन्तिम विश्लेषण में बेमानी ही साबित होंगे, भले ही वे क़ानून और संविधान में मोटे अक्षरों में लिखे हों। जिस देश में संविधान लागू होने के छह दशक बाद भी बच्चों की लगभग आधी आबादी और महिलाओं की आधी से ज़्यादा आबादी भूख और कुपोषण की शिकार हो, जहाँ जातिगत और जेंडर आधारित उत्पीड़न के नये नये घिनौने रूप सामने आ रहे हों वहाँ जब कोई संविधान में मौजूद शोषण से मुक्ति के अधिकार का गुणगान करता है तो वह देश की बहुसंख्यक आम मेहनतकश आबादी के अपमान से अधिक कुछ नहीं लगता है।

भारतीय संविधान के उत्साही समर्थक इस बात का ज़ोर-शोर से बख़ान करते नहीं थकते हैं कि संविधान में संवैधानिक उपचार भी एक मूलभूत अधिकार है। इस प्रावधान के अनुसार हर नागरिक को यह मूलभूत अधिकार है कि यदि राज्य या कोई व्यक्ति उसके मूलभूत अधिकारों का हनन करता है तो वह सीधे सर्वोच्च न्यायालय में गुहार लगा सकता है। लेकिन ज़मीनी हक़ीक़त तो यह है कि न सिर्फ़ भौगोलिक दृष्टि से बल्कि आर्थिक दृष्टि से भी उच्चतम न्यायालय भारत के आम नागरिक की पहुँच से काफी दूर है। न्याय की प्रक्रिया बेहद लम्बी और बेहिसाब ख़र्चीली होने की सूरत में संवैधानिक उपचार का अधिकार भी महज़ औपचारिक ही है जिसका संविधान का ढिंढोरा पीटने वाले कितना भी इस्तेमाल करें, परन्तु भारत की आम बहुसंख्यक जनता के मूलभूत अधिकारों की हिफ़ाजत करने में यह प्रावधान निहायत ही निकम्मा साबित हुआ है। यही नहीं भारतीय राज्य ने नागरिकों को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करने की ज़िम्मेदारी निभाना भी ज़रूरी नहीं समझा है। यही वजह है कि अनपढ़ और ग़रीब आबादी तो दूर पढ़े-लिखे मध्यवर्गीय पृष्ठभूमि के अधिकांश लोग भी अपने मूलभूत अधिकारों के प्रति सर्वथा अनभिज्ञ पाये जाते हैं।

इस प्रकार हम पाते हैं कि भारतीय संविधान में मौजूद मूलभूत अधिकार बेहद सीमित हैं और जनता को जो कुछ अधिकार दिये भी गये हैं उनको भी तमाम शर्तों, पाबन्दियों और कानूनी शब्दाडम्बरों के मायाजाल से जकड़ कर प्रभावहीन बना दिया गया है। अगले अंक में हम इन शर्तों और पाबन्दियों और मूलभूत अधिकारों की अन्य सीमाओं की विस्तृत चर्चा करेंगे।

(अगले अंक में जारी)

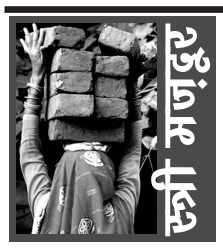

स्त्री मज़दूरों और उनकी माँगों के प्रति पुरुष मज़दूरों का नज़रिया

न सिर्फ आम मज़दूरों में बल्कि ज़्यादातर आगे बढ़े हुए और जुझारू चेतना वाले मज़दूरों में भी स्त्री मज़दूरों की माँगों के प्रति सहानुभूति या समर्थन के रवैये का अभाव दिखायी देता है।

चाहे स्त्री-पुरुष मज़दूरों के लिए समान कार्य के समान वेतन की माँग हो, चाहे मातृत्व अवकाश और नवजात पालन-पोषण अवकाश की माँग हो, चाहे कारख़ानों-वर्कशॉपों में शिशुशाला (क्रेच) और बाल शिक्षा (प्री-नर्सरी और नर्सरी) की व्यवस्था की माँग हो, चाहे कार्यस्थलों पर स्त्री मज़दूरों के लिए अलग टॉयलेट और रेस्टरूम की माँग हो, चाहे रात की पाली में काम करने वाली औरतों के आने-जाने और सुरक्षा के इन्तज़ाम की माँग हो, ज़्यादातर पुरुष मज़दूर अक्सर स्त्री मज़दूरों की इन माँगों की या तो उपेक्षा और अनदेखी करते हैं या मन ही मन इनके प्रति विरोध भाव रखते हैं। जो मज़दूर पीस रेट की व्यवस्था को ख़त्म करने और पीस रेट पर काम करने वालों से जुड़ी तमाम माँगों को उचित मानते हैं, उन्हीं में से ज़्यादातर ऐसे भी हैं जो चाहते हैं कि उनकी पत्नी, बहन या बेटी घर में ही रहकर तमाम घरेलू ज़िम्मेदारियाँ सम्हालते हुए पीस रेट पर काम करके कुछ कमा लिया करें। इस प्रकार स्त्री मज़दूर चूल्हे-चौखट की ग़ुलामी के साथ-साथ पूँजीपतियों के लिए सबसे सस्ती दरों पर श्रम-शक्ति बेचने वाली और सबसे अधिक हाड़तोड़ मेहनत करने वाली उजरती ग़ुलाम बनकर रह जाती है।

उत्पादन और जीने के तौर-तरीक़े में तकनोलॉजी ने जो भारी बदलाव पैदा किये हैं, उनसे आधुनिक मज़दूर वर्ग का जीवन भी अछूता नहीं है, लेकिन जहाँ तक सोच-विचार-संस्कार का सवाल है, सदियों पुराने स्त्री-विरोधी मर्दवाद (पुरुष स्वामित्ववाद) से उनका पीछा अभी भी छूटा नहीं है। इन पुराने मूल्यों को आज के पूँजीवाद ने न केवल बनाये रखा है, बल्कि खाद-पानी देने का काम भी किया है। केवल एक उदाहरण काफ़ी होगा। आप उन तमाम टीवी सीरियलों और फिल्मों को याद कर सकते हैं जो परम्परागत स्त्री की छवि, पुरातनपंथी रीति-रिवाजों और पुरुष स्वामित्ववादी धार्मिक रूढ़ियों को महिमामण्डित करके परोसते रहते हैं। जो पूँजीवाद मुनाफ़ा बढ़ाने और माल बेचने के लिए नयी से नयी तकनोलॉजी के इस्तेमाल के लिए तत्पर रहता है, वहीं मेहनतकश आम जनता को पूँजी की सत्ता के ख़िलाफ़ बग़ावत करने से रोकने के लिए अन्धविश्वास, भाग्यवाद, धार्मिक रूढ़ियों और पुरातनपंथी मूल्यों को न सिर्फ अपना लेता है, बल्कि नये-नये ढंग से उनकी पैकेजिंग करके प्रस्तुत करता रहता है। इतिहास पर यदि निगाह डालें तो यूरोप में सत्तासीन होते ही पूँजीपति वर्ग ने न सिर्फ 'स्वतंत्रता-समानता-भातृत्व' के झण्डे को धूल में फेंक दिया बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों के स्तर पर भी तर्क, विज्ञान और भौतिकवादी मूल्यों को तिलांजलि देकर धार्मिक रूढ़ियों-अन्धविश्वासों को बढ़ावा देने लगा था। फिर भी उन्नीसवीं सदी के यूरोपीय पूँजीवादी समाजों में एक हद तक जनवादी मूल्य और स्पेस बने हुए थे। बीसवीं सदी साम्राज्यवाद की सदी थी जब पूँजीवादी पतनशीलता की ऐतिहासिक ढलान की शुरुआत हुई। बुर्जुआ जनवादी मूल्य विघटित होने लगे और समाज में जनवादी स्पेस सिकुड़ता चला गया। बीसवीं सदी के आखिरी दशकों से लेकर अब तक का समय, जिसे भूमण्डलीकरण का दौर कहा जा रहा है, वह पूरी दुनिया के उन्नत और पिछड़े – सभी पूँजीवादी समाजों में चरम पतनशील, निरंकुश, सर्वसत्तावादी सांस्कृतिक-सामाजिक मूल्यों के वर्चस्व के साथ ही धार्मिक कट्टरपंथ, पुनरुत्थानवाद और रूढ़िवाद के व्यापक फैलाव का दौर है। एक तो आज का चरम पतनशील पूँजीवादी समाज अपनी स्वतन्त्र गति से इन चीजों को जन्म दे रहा है, दूसरे, शासक पूँजीपति वर्ग मेहनतकश जन-समुदाय को अपनी नारकीय जीवन-स्थितियों के ख़िलाफ़ बग़ावत करने से रोकने के लिए भी भाग्यवाद, अन्धविश्वास और धार्मिक रूढ़ियों को बढ़ावा देता है। आज ऐसा करने में नयी तकनोलॉजी आधारित मीडिया (टीवी, इण्टरनेट आदि) का वह विशेष उपयोग कर रहा है। यानी विज्ञान के सहारे अन्धविश्वास और रूढ़ियों का विज्ञान-विरोधी घटाटोप फैलाया जा रहा है।

भारतीय समाज में ऐसा विशेष तौर पर हो रहा है, जहाँ पूँजीवाद के मद्धिम और क्रमिक विकास के चलते आम जनजीवन में पूँजीवाद पूर्व अवस्थाओं के धार्मिक मूल्यों, सामाजिक रूढ़ियों, भाग्यवाद, अन्धविश्वास आदि की प्रभावी उपस्थिति बनी रही है। यहाँ बीसवीं सदी में जनवादी मूल्यों का जो विकास हुआ, वह अति सीमित था और आज के पूँजीवादी पतनशीलता के दौर में (जिसे उदारीकरण-निजीकरण-भूमण्डलीकरण का दौर कहा जाता है), रहे-सहे जनवादी मूल्य भी सिकुड़ते-बिखरते जा रहे हैं। पूँजी की गति दोहरे प्रभाव वाली है। पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली एक ओर आम जनता को आधुनिक ढंग से जीने-रहने की चेतना दे रही है, दूसरी ओर वह स्वस्थ जनवादी मूल्यों और तर्कणा के विकास को रोक भी रही है। किसी भी समाज में शासक वर्ग की संस्कृति ही हावी और प्रभावी होती है। अत: आश्चर्य नहीं कि आम जनता भी पतनशील और ग़ैर-जनवादी पूँजीवादी मूल्यों-मान्यताओं और पण्यपूजा की संस्कृति की शिकार है। साथ ही, पूँजीपति वर्ग, सचेत रूप से, अन्धविश्वास, भाग्यवाद और रूढ़िवाद का प्रचार-प्रसार करता है ताकि मेहनतकश जनता की वर्ग चेतना को कुण्ठित करते रहा जा सके।

आइये, अब इसी बात को आम मेहनतकशों के जीवन पर और स्त्री मज़दूरों के प्रति पुरुष-मज़दूरों के दृष्टिकोण पर लागू किया जाये। ज़्यादातर मज़दूर गाँव की पृष्ठभूमि (उजड़े हुए या उजड़ते हुए किसान) से आते हैं। इनमें सवर्ण, मध्य जातियों और दलित जातियों – तीनों पृष्ठभूमि के लोग हैं। एक ओर इन मज़दूरों में औरतों को 'पैरों की जूती' और घरेलू दासी समझने की मानसिकता अभी भी बनी हुई है। दूसरी ओर, शहरों में जो स्त्री-विरोधी आधुनिक बर्बरता अनेक रूपों में फली-फूली है, उससे पुरुष मज़दूर भी गहराई से प्रभावित हैं। लोकगीतों के फूहड़ आधुनिक संस्करणों से लेकर पोर्न फिल्मों की सी.डी. और मोबाइलों में पोर्न क्लिपिंग्स आदि के ज़रिए बहुत सारे पुरुष मज़दूर जो सांस्कृतिक नशे की खुराक लेते रहते हैं, वह उन्हें मानसिक रुग्णता और स्त्री-विरोधी मानसिकता का शिकार बनाता रहता है। इसकी अभिव्यक्ति उनके पारिवारिक और सामाजिक जीवन में आती रहती है। पिछड़ी वर्ग चेतना वाले ज़्यादातर मज़दूर अपने घरों में स्त्रियों को घरेलू हिंसा का शिकार बनाते हैं, और कार्यस्थलों पर स्त्री मज़दूरों के प्रति यौन उत्पीड़न का रवैया (अश्लील बातें व इशारे, छेड़छाड़ आदि) अपनाते हैं। यह एक कड़वी सच्चाई है कि मालिकों-मैनेजरों-सुपरवाइज़रों के खुले एवं परोक्ष यौन-उत्पीड़न के अतिरिक्त साथ में काम करने वाले पुरुष मज़दूरों के भी ऐसे रवैये का सामना स्त्री-मज़दूरों को करना पड़ता है। जो मज़दूर कार्यस्थलों पर स्त्री-विरोधी रवैया अपनाते हैं वही उस घटिया परिवेश से अपने घर की स्त्रियों को सुरक्षित बचाना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि उनकी पत्नियाँ या बेटियाँ घरों में ही रहकर परिवार सँभालें और साथ ही पीस रेट पर काम करके कुछ कमाई भी कर लिया करें (क्योंकि एक की मज़दूरी की आमदनी से जैसे-तैसे घर चला पाना भी काफी मुश्किल होता है)। ज़्यादातर मज़दूर स्त्रियाँ भी अपने पुराने संस्कारों व पिछड़ेपन के चलते घरेलू ग़ुलामी के साथ-साथ पूँजीपतियों के मनमाने अतिशोषण का शिकार होने के लिए तैयार हो जाती हैं। जो स्त्रियाँ (ज़्यादातर ठेका, दिहाड़ी या कैजुअल मज़दूर के रूप में या पीस रेट पर) कारख़ानों-वर्कशॉपों में काम करने जाती हैं, उन्हें प्राय: स्वास्थ्य पर भीषण प्रभाव डालने वाले काम (पेशागत स्वास्थ्य की समस्या पुरुषों के मुकाबले स्त्रियों में अधिक होती है) करने होते हैं और मज़दूरी पुरुष मज़दूरों के मुकाबले कम होती है। अपनी पिछड़ी चेतना के चलते और छोटे-छोटे कारख़ानों-वर्कशापों में बिखरे होने के चलते वे अपनी माँगों को लेकर संगठित आवाज़ नहीं उठा पातीं और पुरुष मज़दूरों की द्वेष-भावना के चलते भी उनकी लड़ाई संगठित नहीं हो पाती। इससे न केवल स्त्री-मज़दूरों का पक्ष कमज़ोर होता है, बल्कि पूरे मज़दूर आन्दोलन का पक्ष भी कमज़ोर होता है। आधी आबादी की पहलक़दमी और भागीदारी के बिना कोई भी आर्थिक-राजनीतिक संघर्ष मज़बूत नहीं हो सकता। मज़दूर आन्दोलन और सर्वहारा क्रान्तियों के इतिहास के तथ्य इस सच्चाई की पुरज़ोर तस्दीक करते हैं।

बहुतेरे मज़दूर ऐसे भी हैं जिन्होंने अपनी पत्नियों को गाँव में छोड़ रखा है जहाँ उनकी पत्नियाँ संयुक्त परिवार की पीस डालने वाली घरेलू ग़ुलामी में जी रही हैं, या फिर अपने पारिवारिक मालिकाने की ज़मीन या बटाई पर ली गयी ज़मीन पर हाड़ गला रही हैं। ये वे मज़दूर हैं, जिनकी वर्ग चेतना में अभी भी छोटा मालिक किसान होने के संस्कार और खुशहाल मालिक किसान बन जाने के भ्रम मौजूद हैं। इस भ्रम की क़ीमत सबसे अधिक उनके घरों की औरतें चुकाती हैं। यह जगज़ाहिर सी बात है कि शहरों की अपेक्षा गाँवों में औरतों की घरेलू ग़ुलामी ज़्यादा उबाऊ, नीरस, दमघोंटू और हाड़तोड़ होती है, सामाजिक परिवेश में पुरुष स्वामित्व के बर्बर पुरातन रूप (बर्बर नये रूपों के साथ-साथ) ज़्यादा हावी रहते हैं, ज़्यादा कठिन कृषि कार्यों में (रोपाई-बुवाई-निराई आदि) स्त्रियाँ खटती हैं और मज़दूरी भी उन्हें पुरुषों के मुकाबले काफी कम मिलती हैं।

इन सारी बातों का मूल निचोड़ यह है कि समूचे मज़दूर वर्ग की मुक्ति के लिए, ज़रूरी है कि सामाजिक गतिविधियों और आर्थिक राजनीतिक संघर्षों में उस आधी आबादी की भागीदारी को ज़्यादा से ज़्यादा बढ़ाया जाये जो घरेलू ग़ुलामी के बन्धनों में जकड़ी हुई है। पुरुष मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा का यह एक बुनियादी मुद्दा है कि शेष आधी आबादी को सच्चे मायने में बराबरी का दर्जा देकर पूँजी के विरुद्ध संघर्ष में भागीदार बनाये बिना मज़दूर मुक्ति का लक्ष्य कभी भी हासिल नहीं किया जा सकता। इसके लिए सतत् राजनीतिक शिक्षा और प्रचार के साथ ही सभी पुरुष-स्वामित्ववादी मूल्यों-मान्यताओं-संस्कृति के विरुद्ध एक निरन्तर अभियान चलाना होगा। साथ ही स्त्री मज़दूरों को भी अपनी ग़ुलाम मानसिकता, संस्कार और रूढ़ियों से छुटकारा पाना होगा। न सिर्फ सामाजिक उत्पादन के क्षेत्र में सर्वहारा घरों की स्त्रियों को ज़्यादा से ज़्यादा संख्या में प्रवेश करने के लिए प्रेरित करना होगा, बल्कि मज़दूरों के रोजमर्रा के संघर्षों और दूरगामी राजनीतिक संघर्ष की प्रक्रिया (पूँजी की सत्ता का ध्वंस करके मज़दूर सत्ता की स्थापना का संघर्ष) में भी उन्हें अपनी भागीदारी बढ़ानी होगी। स्त्री मज़दूर अपने अधिकारों के लिए भी सफलतापूर्वक तभी लड़ सकती हैं जब समूचे मज़दूर वर्ग के अधिकारों की लड़ाई में भी उसकी भागीदारी हो, यानी उसकी माँग समूचे मज़दूर वर्ग के माँगपत्रक का एक भाग हो। निश्चय ही सामाजिक उत्पादन के साथ ही सामाजिक-राजनीतिक गतिविधियों में अपनी भागीदारी बढ़ाने के लिए स्त्री मज़दूरों को अपने रूढ़िगत संस्कारों और "घरेलूपन" की मानसिकता के साथ-साथ अपने घरों और समाज में पुरुष मज़दूरों की मर्दवादी धक्कड़शाही एवं चौधराहट की मानसिकता से जूझना होगा। लेकिन यहाँ सवाल मर्द बनाम औरत का नहीं, बल्कि सारे मज़दूरों की मुक्ति का है। स्त्रियों की मुक्ति के बिना मज़दूर मुक्ति सम्भव नहीं और मज़दूर मुक्ति के बिना स्त्रियों की मुक्ति सम्भव नहीं। इसलिए, बुनियादी सवाल यहाँ यह है कि पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली, समाज व्यवस्था और राज्यतंत्र का हित साधने वाली पुरुष-आधिपत्य की संस्कृति के विरुद्ध संघर्ष करके स्त्री और पुरुष – दोनों ही समुदायों के सर्वहारा की जुझारू वर्ग चेतना किस प्रकार जागृत और संगठित की जाये।

(शेष अगले अंक में)

● कविता

"...उसके शरीर को कुछ विशेष काम करने पड़ते हैं, इसलिए मेहनत करने वाली स्त्री को पूँजीवादी शोषण से बचाने के लिए विशेष व्यवस्था की ज़रूरत है, यह चीज़ मुझे सर्वथा स्पष्ट लगती है। वे अंग्रेज़ स्त्रियाँ जो नारी जाति के इस औपचारिक अधिकार के लिए लड़ रही थीं कि पूँजीपतियों द्वारा शोषण कराने की उन्हें भी उतनी ही छूट मिल जाये जितनी कि पुरुषों को प्राप्त है, उनकी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस बात में दिलचस्पी थी कि पूँजीपति वर्ग को स्त्रियों और पुरुषों का समान शोषण करने की सुविधा हासिल हो जाये। ... मेरा विश्वास है कि स्त्रियों और पुरुषों के बीच वास्तविक समानता केवल तभी स्थापित हो सकती है जबकि पूँजी द्वारा किये जाने वाले दोनों के शोषण को मिटा दिया जाय और गृहस्थी के घरेलू काम-काज को एक सार्वजनिक उद्योग बना दिया जाये।"

● फ्रेडरिक एंगेल्स

(5 जुलाई, 1885 के आसपास गर्टूड जिलामें-शाक के नाम लिखे गये एक पत्र का अंश)

आम लोगों में मौजूद मर्दवादी सोच और मेहनतकश स्त्रियों की घरेलू ग़ुलामी के ख़िलाफ़ संघर्ष के बारे में कम्युनिस्ट नज़रिया

(क्लारा ज़ेटकिन से व्ला. इ. लेनिन की लम्बी बातचीत का एक अंश)

(दुनिया की पहली समाजवादी क्रान्ति के महान नेता लेनिन ने जर्मन कम्युनिस्ट पार्टी और अन्तरराष्ट्रीय स्त्री आन्दोलन की नेता क्लारा ज़ेटकिन के साथ यह बातचीत 1920 में मास्को में की थी। इस बातचीत में लेनिन ने स्त्रियों की घरेलू ग़ुलामी और पुरुषों की पुरुष-स्वामित्ववादी मानसिकता के प्रति गहरी नफ़रत दिखायी है। उनका कहना है कि मज़दूर वर्ग के भीतर भी ये चीज़ें गहराई से जड़ जमाये हुए हैं। मेहनतकश औरतों की घरेलू ग़ुलामी और पुरुष मज़दूरों की "पुराने दास स्वामियों जैसी" मानसिकता से संघर्ष किये बिना सर्वहारा क्रान्ति आगे डग नहीं भर सकती। मेहनतकश औरतों की आधी आबादी की लामबन्दी के बिना मज़दूर वर्ग अपनी मुक्ति की लड़ाई को कतई आगे नहीं बढ़ा सकता। लेनिन उन कम्युनिस्टों की कटु आलोचना करते हैं जो अन्दर से दकियानूस होते हैं और पुरुष-स्वामित्व के संस्कारों से मुक्त नहीं होते। वे स्त्री मज़दूरों को जागृत और संगठित करने के काम पर पर्याप्त ज़ोर न देने की प्रवृत्ति की भी कटु आलोचना करते हैं।

आज से 95 वर्षों पहले अक्टूबर 1917 में मज़दूर वर्ग ने रूस में समाजवादी क्रान्ति सम्पन्न की थी। मज़दूर सत्ता ने स्त्रियों को दुनिया के किसी भी पूँजीवादी जनवादी गणराज्य के मुकाबले कई गुना अधिक समानता के अवसर और अधिकार दिये। जीवन के हर क्षेत्र में सक्रियता के अवसर देने के साथ ही घरेलू दासता से छुटकारे के लिए नयी-नयी सामाजिक संस्थाएँ खड़ी की गयीं। फिर भी लेनिन का मानना था कि स्त्रियों की सच्ची-सम्पूर्ण मुक्ति के लिए समाजवाद की पूरी अवधि के दौरान पुरुष स्वामित्ववाद और पूँजीवादी अवशेषों के विरुद्ध लगातार लम्बा संघर्ष चलाना होगा। – सम्पादक)

"...उसूलों की स्पष्ट समझदारी के साथ, और एक मज़बूत सांगठनिक आधार पर स्त्री समुदाय की लामबन्दी कम्युनिस्ट पार्टियों के लिए और उनकी जीत के लिए एक महत्वपूर्ण सवाल है। लेकिन हम ख़ुद को धोखा न दें। हमारे राष्ट्रीय सेक्शनों में (यानी कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल के अंग के तौर पर अलग-अलग देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों में –अनु.) अभी भी इस प्रश्न की सही समझदारी का अभाव है। जब कम्युनिस्ट नेतृत्व के अन्तर्गत मेहनतकश स्त्रियों का एक जनान्दोलन खड़ा करने का मुद्दा आता है तो वे एक निष्क्रिय और 'इन्तज़ार करो और देखो' जैसा रुख अपनाते हैं। उन्हें इस बात का अहसास नहीं होता कि ऐसे जनान्दोलन को विकसित करना और नेतृत्व देना सभी पार्टी गतिविधियों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, बल्कि सभी पार्टी कार्यों का आधा भाग है। एक स्पष्ट दिशा वाले, शक्तिशाली और व्यापक कम्युनिस्ट स्त्री आन्दोलन की ज़रूरत और क़ीमत को वे समय-समय पर स्वीकार तो करते हैं, लेकिन यह पार्टी के सतत् सरोकार और कार्यभार के रूप में उसकी स्वीकृति होने के बजाय अफ़लातूनी जुबानी जमाख़र्च मात्र होती है।"

"स्त्रियों के बीच उद्वेलन और प्रचार के काम को, उन्हें जगाने और क्रान्तिकारी बनाने के काम को वे दूसरे प्राथमिकता पर रखते हैं और इसे सिर्फ स्त्री कम्युनिस्टों का काम समझते हैं। यदि यह काम तेज़ी से और मज़बूती से आगे नहीं बढ़ता तो उसके लिए इन्हें (यानी स्त्री कम्युनिस्टों को –अनु.) ही फटकार लगायी जाती है। यह गलत है, बुनियादी तौर पर गलत है। यह सरासर गलत है। यह औरतों की समानता को ठीक उलट देने जैसी बात है।"

"हमारे राष्ट्रीय सेक्शनों (अलग-अलग देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों –अनु.) के इस गलत दृष्टिकोण की जड़ में क्या है? (मैं यहाँ सोवियत रूस की बात नहीं कर रहा हूँ।) अन्तिम विश्लेषण में, यह स्त्रियों को और उनकी उपलब्धियों को कम करके आँकना है। हाँ, यही बात है। दुर्भाग्यवश, अपने बहुतेरे कामरेडों के बारे में अभी भी हम कह सकते हैं : 'कम्युनिस्ट को खुरचकर देखो, एक दकियानूस सामने आ जायेगा।' इस बात को पक्का करने के लिए आपको संवेदनशील जगहों पर – जैसे कि स्त्रियों से सम्बन्धित उसकी मानसिकता को – खुरचना होगा। क्या इसका इससे भी ज़्यादा प्रत्यक्ष प्रमाण कोई और हो सकता है कि एक पुरुष शान्तिपूर्वक एक स्त्री को उसके घरेलू काम जैसे तुच्छ, उबाऊ, पस्त कर देने वाले, समय-खपाऊ काम में, खपते हुए देखता रहता है और उसकी आत्मा को संकुचित होते हुए, उसके दिमाग को कुन्द होते हुए, उसके दिल की धड़कन को मद्धम पड़ते हुए और उसके इरादों को कमज़ोर होते हुए देखता रहता है? बेशक मैं उन बुर्जुआ महिलाओं की बात नहीं कर रहा हूँ जो अपने सभी घरेलू कामों और अपने बच्चों की देखभाल की जिम्मेदारी नौकरों-नौकरानियों पर डाल देती हैं।

लेनिन और क्लारा ज़ेटकिन

मैं जो कह रहा हूँ वह स्त्रियों की विशाल बहुसंख्या पर लागू होता है जिनमें मज़दूरों की पत्नियाँ भी शामिल हैं और वे स्त्रियाँ भी शामिल हैं जो सारा दिन फैक्ट्री में खटती हैं और पैसा कमाती हैं।"

"बहुत कम पति, सर्वहारा वर्ग के पति भी इनमें शामिल हैं, यह सोचते हैं कि अगर वे इस 'औरतों के काम' में हाथ बँटायें, तो अपनी पत्नियों के बोझ और चिन्ताओं को कितना कम कर सकते हैं, या वे उन्हें पूरी तरह से भारमुक्त कर सकते हैं। लेकिन नहीं, यह तो 'पति के विशेषाधिकार और शान' के ख़िलाफ़ होगा। वह माँग करता है कि उसे सुकून और आराम चाहिए। औरत की घरेलू ज़िन्दगी का मतलब है एक हज़ार तुच्छ कामों में अपने स्व को नित्यप्रति कुर्बान करते रहना। उसके पति के, उसके मालिक के, पुरातन अधिकार बने रहते हैं और उन पर ध्यान नहीं जाता। वस्तुगत तौर पर, उसकी दासी अपना बदला लेती है। यह बदला छिपे रूप में भी होता है। उसका पिछड़ापन और अपने पति के क्रान्तिकारी आदर्शों की समझदारी का अभाव पुरुष की जुझारू भावना और संघर्ष के प्रति दृढ़निश्चयता को पीछे खींचने का काम करता रहता है। ये चीजें दीमक की तरह, अदृश्य रूप से, धीरे-धीरे लेकिन यकीनी तौर पर अपना काम करती रहती है। मैं मज़दूरों की ज़िन्दगी को जानता हूँ और सिर्फ किताबों से नहीं जानता हूँ। स्त्रियों के बीच हमारा कम्युनिस्ट काम, और आम तौर पर हमारा राजनीतिक काम, पुरुषों की बहुत अधिक शिक्षा-दीक्षा की माँग करता है। हमें पुराने दास-स्वामी के दृष्टिकोण का निर्मूलन करना होगा, पार्टी में भी और जन समुदाय के बीच भी। यह हमारे राजनीतिक कार्यभारों में से एक है, एक ऐसा कार्यभार जिसकी उतनी ही आसन्न आवश्यकता है जितनी मेहनतकश स्त्रियों के बीच पार्टी कार्य के गहरे सैद्धान्तिक और व्यावहारिक प्रशिक्षण से लैस स्त्री और पुरुष कामरेडों का एक स्टाफ गठित करने की।"

सोवियत रूस की मौजूदा स्थितियों के बारे में मेरे (क्लारा ज़ेटकिन के –अनु.) सवाल का जवाब देते हुए लेनिन ने कहा :

"सर्वहारा अधिनायकत्व की सरकार – ज़ाहिर है कि कम्युनिस्ट पार्टी और ट्रेड यूनियनों के साथ मिलकर – स्त्रियों-पुरुषों के पिछड़े विचारों पर विजय पाने और इस प्रकार पुरानी, ग़ैरकम्युनिस्ट मानसिकता को समाप्त करने की हर मुमकिन कोशिश कर रही है। कहने की ज़रूरत नहीं कि क़ानून के सामने स्त्री और पुरुष पूर्णत: समान हैं। इस क़ानूनी समानता को प्रभावी बनाने की सच्ची ख़्वाहिश हर दायरे में स्पष्टत: देखी जा सकती है। हम अर्थतंत्र, प्रशासन, क़ानून बनाने और सरकार चलाने के कामों में भागीदारी के लिए औरतों की इन्दराजी कर रहे हैं। उनके लिए सभी पाठ्यक्रमों और शैक्षिक संस्थाओं के दरवाज़े खुले हुए हैं, ताकि वे अपने पेशागत और सामाजिक प्रशिक्षण को उन्नत कर सकें। हम सामुदायिक रसोईघर, सार्वजनिक भोजनालय, लॉण्ड्री और मरम्मत की दूकानें, शिशुशालाएँ, किण्डरगार्टेन, बालगृह तथा हर प्रकार के शिक्षा संस्थान संगठित कर रहे हैं। संक्षेप में, हम लोग घरेलू और शिक्षा सम्बन्धी कार्यों को व्यक्तिगत गृहस्थी के दायरे से समाज के दायरे में स्थानान्तरित करने के अपने कार्यक्रम की शर्तों को पूरा करने के लिए पर्याप्त संजीदा हैं। इस तरह औरत अपनी पुरानी घरेलू गुलामी और अपने पति पर हर तरह की निर्भरता से मुक्त हो रही है। उसे सक्षम बनाया जा रहा है कि वह समाज में अपनी क्षमताओं और अभिरुचियों के हिसाब से अपनी भूमिका पूरी तरह से निभा सके। बच्चों को घर की अपेक्षा, विकास के बेहतर अवसर दिये जा रहे हैं। हमारे यहाँ स्त्री मज़दूरों के लिए दुनिया में सबसे प्रगतिशील श्रम क़ानून हैं और संगठित मज़दूरों के अधिकृत प्रतिनिधियों द्वारा उनकी तामील होती है। हम प्रसूति गृह, माँओं और बच्चों के देखभाल के केन्द्र, नवजातों और बच्चों के लालन-पालन सम्बन्धी पाठ्यक्रम, माँओं और बच्चों की देखभाल सम्बन्धी प्रदर्शनियाँ और ऐसी ही अन्य चीज़ें संगठित कर रहे हैं। हम ज़रूरतमन्द और बेरोज़गार औरतों की ज़रूरतें पूरी करने की हर सम्भव कोशिश कर रहे हैं।"

"हम अच्छी तरह समझते हैं कि मेहनतकश स्त्रियों की ज़रूरतों को देखते हुए यह सब कुछ फिर भी बहुत कम है, कि उनकी सच्ची मुक्ति के लिए तो यह सब बिल्कुल नाकाफ़ी है। फिर भी, ज़ारकालीन और पूँजीवादी रूस में जो कुछ था, उसकी तुलना में यह बहुत आगे बढ़ा हुआ क़दम है। साथ ही, जिन देशों में अभी भी पूँजीवाद का बोलबाला है, वहाँ की स्थिति की तुलना में भी यह बहुत है। यह सही दिशा में एक अच्छी शुरुआत है, और हम इसे लगातार आगे बढ़ायेंगे, और सारी उपलब्ध ऊर्जा लगाकर आगे बढ़ायेंगे। आप, अन्य देशों के साथी, आश्वस्त रह सकते हैं। क्योंकि हर बीतते दिन के साथ यह अधिकाधिक स्पष्ट होता जा रहा है कि करोड़ों स्त्रियों को साथ लिये बिना हम आगे नहीं बढ़ सकते।" ●

"असल बात तो यह है कि मज़हब तो है सिखाता आपस में बैर रखना। भाई को है सिखाता भाई का खून पीना। हिन्दुस्तानियों की एकता मज़हब के मेल पर नहीं होगी, बल्कि मज़हबों की चिता पर होगी। कौवे को धोकर हंस नहीं बनाया जा सकता। कमली धोकर रंग नहीं चढाया जा सकता। मज़हबों की बीमारी स्वाभाविक है। उसकी मौत को छोड़ कर इलाज नहीं।"

– राहुल सांकृत्यायन

"अपनी राजनीतिक समस्याओं का हल धर्मों में खोजना भारी गलती है। धार्मिक विचारों के लिए स्वतंत्रता भले ही रहे, लेकिन राजनीति में धर्म का दखल बहुत ही हानिकारक बात है।"

– राहुल सांकृत्यायन

"धर्म द्वारा पागल बनाये गये लोग सबसे ख़तरनाक पागल होते हैं और... जिन लोगों का मक़सद समाज में विघटन पैदा करना होता है, वे हमेशा समझते हैं कि मौका पड़ने पर ऐसे पागलों का असरदार इस्तेमाल किस तरह किया जाता है।"

– देनी दिदरो (प्रबोधन काल के महान फ्रांसीसी दार्शनिक)

"धर्मान्धता से बर्बरता महज़ एक कदम की दूरी पर होती है।"

– देनी दिदरो

साहित्य का पन्ना

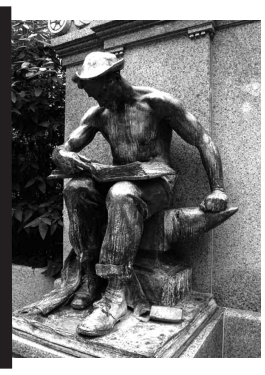

दक्षिण अफ्रीकी कहानी

अँधेरी कोठरी में

● अलेक्स ला गुमा

एक झटके से कार पुलिस स्टेशन के सामने रुकी और खुफिया अधिकारी उसमें से बाहर निकले। चारों ओर ऊँचे घने पेड़ थे और अँधेरे में उनकी विशाल बेडौल आकृतियाँ हिल-डुल रही थीं। गेट से पुलिस स्टेशन के बरामदे तक लाल बजरी से बना रास्ता था जिसके दोनों तरफ घास के लॉन थे, जिस पर चाँद और बिजली की मिली-जुली रोशनी पसर रही थी। इस पीली मटमैली रोशनी में गाढ़े लाल ईंट से बनी पुलिस स्टेशन की नयी इमारत चमक रही थी।

सादी पोशाक में तैनात दोनों अधिकारी कार से निकलकर मुस्तैदी से खड़े हो गये और इलियास के बाहर आने का इन्तज़ार करने लगे। इलियास के हाथों में हथकड़ी थी। दोनों उसे लेकर पुलिस स्टेशन की ओर बढ़े। इनमें से एक लम्बा और हट्टा-कट्टा नौजवान था और उसने बड़े करीने से अपने बाल सँवार रखे थे – उसके बाल किसी सुन्दर चिड़िया के पंख की तरह चमक रहे थे। दूसरा देखने में कोई खिलाड़ी लगता था। उसने चुस्त पैंट के साथ एक विंडचीटर और सिर पर गोल्फ़ कैप पहन रखी थी और लगता था जैसे खेल के मैदान से सीधे चला आ रहा हो। उसके सख़्त चेहरे पर लाल-भूरी मूँछें थीं।

पुलिस स्टेशन के बरामदे में अच्छी-खासी रोशनी थी और कमर से रिवाल्वर लटकाये पुलिस अधिकारी अपनी वर्दियों में इधर-उधर आ-जा रहे थे। बरामदे की सीढ़ियाँ चढ़ते इलियास को उन्होंने ग़ौर से देखा। अन्दर पुलिस स्टेशन दो हिस्सों में बँटा था – एक हिस्सा गोरों के लिए और दूसरा अश्वेतों के लिए। दोनों खुफ़िया अधिकारी इलियास को लेकर अश्वेतों के लिए बने हिस्से में गये और वहाँ ड्यूटी पर तैनात सार्जेण्ट को इलियास को सौंप दिया। सख़्त चेहरे और भूरी मूँछों वाले अधिकारी ने उस सार्जेण्ट से कहा, "इसे सबेरे तक हिरासत में रखो। हम लोग कल इसे हटा देंगे।"

सार्जेण्ट ने तीखी नजरों से इलियास को घूरा। इस बीच दोनों अधिकारियों ने सार्जेण्ट की मेज पर सारा सामान रख दिया, जो इलियास के पास गिरफ़्तारी के समय बरामद हुए थे – एक पाइप और तम्बाकू का पैकेट, माचिस, एक मामूली किस्म की जेबघड़ी और मुड़ी-तुड़ी पासबुक।

पुलिस स्टेशन के अहाते से बाहर सड़क से एक बस गुज़री। यह लगभग आधी रात का वक्त था। भालों से लैस दो अफ्रीकी कांस्टेबल आकर इलियास के दोनों ओर खड़े हो गये थे। उन्होंने इलियास को देखा और आपस में कुछ बुदबुदाये। गोल्फ़ कैप वाले अधिकारी ने जम्हाई ली और अपने साथी की ओर मुख़ातिब होकर कहा, "मेरी ड्यूटी तो कब की ख़त्म हो गयी होती, लेकिन इन हरामज़ादों की वजह से आराम भी नहीं मिलता।" उसने अपने विंडचीटर के अन्दर हाथ डालकर सिगरेट का पैकेट निकाला और अपने साथी की ओर बढ़ाया।

इस बीच सार्जेण्ट ने उन सामानों की सूची तैयार कर दी थी, जो इलियास के पास से बरामद हुए थे। अभी वह सामानों को सहेज ही रहा था कि एक आदमी लड़खड़ाता हुआ आया और दीवार से लगी बेंच पर बैठ गया। इसे लेकर जो पुलिसवाला आया था, वह बेतहाशा गाली दिये जा रहा था। वह आदमी कराह रहा था और सिर से पाँव तक खून से तर था। ऐसा लगता था जैसे किसी ने बाल्टी में भरकर लाल रंग उसके ऊपर डाल दिया हो। वह नंगे पाँव खून से तर अपने चीथड़ों में बेंच पर लुढ़का रहा और चीखता रहा।

"ओफ़्फ़ोह," सार्जेण्ट ने गुस्से से घूरते हुए कहा, "अब इस साले को क्या हो गया?"

"पी के पड़ा हुआ था... शुक्रवार की रात है न!" साथ वाले कांस्टेबल ने कहा।

"सर, इन्होंने मुझे बहुत पीटा है," घायल व्यक्ति ने बड़ी मुश्किल से फ़रियाद की।

"अबे साले, यहाँ कोई सर और मैडम नहीं है। बॉस बोल बॉस।"

"बॉस, इन्होंने मुझे पीटा।"

"तुझे कोई बयान देना है?" सार्जेण्ट ने पूछा।

इस बीच रेडक्रॉस की पोशाक पहने एक व्यक्ति उस घायल आदमी के करीब बैठकर घावों को देखने लगा। खुफ़िया विभाग के दोनों अधिकारी अन्यमनस्क भाव से खड़े देखते रहे। गोल्फ़ कैप वाला अधिकारी बार-बार मुट्ठियाँ खोलता और बन्द करता ऐसा लग रहा था जैसे वह किसी को पीटने के लिए बेचैन हो। रेडक्रॉस वाले व्यक्ति ने घायल आदमी के ऊपर चादर डाल दी। सार्जेण्ट ने सामानों की सूची तैयार करने के बाद इलियास पर निगाह डाली।

"इसे दस्तख़त करना आता है?" सार्जेण्ट ने खुफ़िया अधिकारी से पूछा।

"बिल्कुल सार्जेण्ट। यह पढ़ा-लिखा विद्वान कलूटा है।"

सार्जेण्ट ने इलियास से सामान की रसीद पर दस्तख़त करवाया और उसकी एक प्रतिलिपि इलियास के हथकड़ी लगे हाथों में पकड़ा दी। सार्जेण्ट ने फिर आवाज़ देकर एक सिपाही को बुलाया और इलियास को उसके ज़िम्मे कर दिया। सिपाही उसे लेकर हवालात की ओर चल दिया।

डॉक्टर ने उसकी बात बीच में ही काट दी और सिगरेट का कश लेने के बाद बोला, "मिस्टर ब्यूक्स, घाव देखते ही मैं बता सकता हूँ कि यह गोली से लगा घाव है या चाकू से, हालाँकि गोली लगे घाव से मेरा ज़्यादा साबका नहीं पड़ा है। तुम्हारी बाँह के घाव को मैं समझ रहा हूँ... क्या पुलिस की गोली थी?"

ब्यूक्स ने स्वीकार में सिर हिलाया। डॉक्टर ने कहा, "मेरा भी यही अन्दाज़ा था। आजकल मेरे देश में यह सब ख़ूब हो रहा है... बेशक क़ानून कहता है कि ऐसे मामलों की मैं पुलिस में रिपोर्ट करूँ।"

"क्या आप क़ानून का पालन करेंगे?"

अब इलियास अकेला था। उसने उस तंग अँधेरी कोठरी का निरीक्षण किया – निकलने की कोई गुंजाइश नहीं है। उसे लगा, जैसे बोतल के अन्दर किसी मक्खी को बन्द कर दिया गया हो। हथकड़ी अब भी लगी थी। वह चुपचाप फर्श पर बैठ गया और सोचने लगा। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि पुलिस को कैसे मीटिंग वाली जगह का पता चला। साथियों ने पूरी एहतियात बरती थी, फिर भी यह कैसे हो गया? उसे उम्मीद थी कि ब्यूक्स ज़रूर बच गया होगा। कमरे के बाहर गोली चलने की आवाज़ सुनायी दी थी, लेकिन ब्यूक्स बच ही गया होगा। अगर वह पकड़ा गया होता तो खुफ़िया अधिकारी उसे भी अब तक यहाँ पहुँचा दिये होते। अब तक सब तितर-बितर हो गये होंगे ओर ब्यूक्स अगर बचा होगा तो भी उसे काम करने में काफी दिक्कत होगी।

"इलियास, अब उन बातों को सोचने से कोई फ़ायदा नहीं – तुम तैयारी करो अब उनके सवालों का जवाब देने की। कल से ही तुमसे पूछताछ का सिलसिला शुरू होगा," उसने मन ही मन कहा और एक बार फिर कोठरी के हर कोने पर निगाह डाली।

इस तरह की कोठरी में उसे पहले भी एक बार डाला गया था, जब उसने हड़ताल में हिस्सा लिया था। उस समय पुलिस ने इतना पीटा था कि वह बेहोश हो गया था। बेहोशी की हालत में ही उसे हवालात की कोठरी में डाल दिया गया था। उसके ऊपर करारनामा तोड़ने का आरोप था और जेल से रिहा होने के बाद उसे शहर से दूर एक ट्रांज़िट कैम्प में रख दिया गया।

उसे आज फिर उस कैम्प की याद आ रही थी – टूटी-फूटी उजाड़ झोपड़ियों की उदास कतारें और कामचलाऊ तम्बू जिनके फटे कोने हवा के ज़ोर से इस तरह फड़फड़ाते थे जैसे किसी चिड़िया के नुचे हुए डैने हों। समूचा कैम्प विस्थापित और लावारिस बेरोज़गारों से भरा था। इनमें से कुछ ऐसे थे जिन्हें गोरों के इलाके में काम करने के अधिकार से वंचित कर दिया गया था और कुछ ऐसे थे जिन्होंने कुछ ही दिन पहले जेल की सज़ा काटी थी। तंग छोटी कोठरियों में पूरा का पूरा परिवार भरा रहता था।

इलियास को अच्छी तरह याद है, जब वे यहाँ आये तो कोई काम नहीं था। बड़ी देर तक वे उस पुरानी मरियल बस से उतरने के बाद चुपचाप खड़े रहे और दूर पहाड़ी से आ रही हवा के सर्द झोंकों को झेलते रहे। फिर कुछ अफ़सरनुमा गोरे आये, उनके कागज़ात देखे गये और उन्हें कैम्पों के हवाले कर दिया गया। सारा-सारा दिन वे झुण्ड बनाकर बैठे रहते और समझ में नहीं आता था कि क्या किया जाये। चारों ओर नंगी टूटी पहाड़ियाँ थीं। लगता था जैसे किसी दैत्य के बेडौल दाँतों के बीच उन्हें ठेल दिया गया हो। चकती लगे कम्बलों को लपेटे औरतें लगातार उस पथरीली ज़मीन को इस लायक बनाने में जुटी रहतीं, जिससे उसमें कुछ उगाया जा सके, पर सारी मेहनत बेकार जाती।

खाने के लिए कुछ भी नहीं था। कुछ समय तक इन्तज़ार करने के बाद इलियास ने एक आदमी से दोस्ती कर ली जिसका नाम मदलका था। वह जवान और हट्टा-कट्टा था और उसने सड़क बनाने वालों के साथ मज़दूरी शुरू कर दी थी।

"क्यों भाई, तुम्हें यहाँ क्यों लाया गया।" मदलका ने एक दिन उससे पूछा।

"मैं एक हड़ताल में शामिल था और अब गोरे मुझे शहर में नहीं रहने देंगे।"

"हड़ताल में? यह कब हुई थी?" मदलका ने पूछा।

इलियास ने उस हड़ताल का पूरा किस्सा सुनाया और मदलका ध्यान से सुनता रहा।

सड़क बनाने का काम बड़ा मेहनत वाला काम था लेकिन हफ़्ते भर काम करने के बाद उसे कुछ शिलिंग मिल जाते थे जिससे वह भोजन और तम्बाकू की ज़रूरत किसी तरह पूरी कर लेता था। सबको काम भी नहीं मिलता था। तमाम बूढ़े और रिटायर्ड लोगों को भी यहीं भेज दिया गया था, शहर को अब इनकी कोई ज़रूरत नहीं थी। टूटी-फूटी और बेकार मशीन की तरह लोगों को यहाँ पाट दिया गया था।

"तुमने हड़ताल में हिस्सा लिया था, यह सुनकर मुझे अच्छा लगा," मदलका ने कहा, "मैं खुद जेल में छह महीना काट चुका हूँ। राजनीतिक अपराध के लिए। सरकार के ख़िलाफ़ कुछ भी बोलो तो गोरे बर्दाश्त नहीं कर पाते। मुझे एक हमलावर भीड़ की अगुवाई करने के जुर्म में पकड़ लिया गया और जेल भेज दिया गया। जेल से छूटने के बाद सीधे यहाँ लाकर पटक दिया गया।"

"कैसी हमलावर भीड़," इलियास की उत्सुकता बढ़ी। लंच का समय था और दोनों सड़क के किनारे पेड़ के नीचे बैठकर सुस्ता रहे थे। मदलका बड़े उत्साह के साथ सारी घटना बताता रहा।

ठेकेदार के पास नौ लोग थे जो सड़क बनाने के इस काम में जुटे थे। इनमें से एक था बूढ़ा तसातू जो इलियास जैसे लोगों के दादा की उम्र का था। इतने बूढ़े आदमी को अपने नाती-पोते की उम्र के नौजवानों के साथ पत्थर तोड़ते देखना बड़ा बुरा लगता था, लेकिन कुछ किया भी नहीं जा सकता था। बूढ़ा तसातू अगर काम न करता तो भूखों ही मरता।

एक दिन जब ठेकेदार ने लंच ख़त्म होने की सीटी बजाई, सभी लोग आकर लाइन में खड़े हो गये, लेकिन तसातू लेटा ही रहा।

"इस बूढ़े से कह, जल्दी उठे...यह सोने का वक्त नहीं है।" ठेकेदार ने कड़कते हुए कहा।

जो आदमी बूढ़े तसातू को जगाने के लिए गया था उसने लौटकर बताया, "वह सो नहीं रहा है। वह अपने पुरखों के पास जा चुका है। हो सकता है उसे इस धरती की तुलना में वहाँ ज़्यादा ही प्यार मिले।" सबने गौर से देखा, बूढ़ा तसातू पुराने कपड़ों की गठरी की तरह ईंट-पत्थर के टुकड़ों पर पड़ा था।

तसातू की शवयात्रा में सभी ने हिस्सा लिया, हालाँकि किसी को यह नहीं पता था कि वह रहने वाला कहाँ का था या कहाँ से आया था। वह बस एक ऐसा अनजान बूढ़ा था जिसने ज़िन्दा रहने के लिए मरने की हद तक काम किया। उसे एक कम्बल में लपेटा गया – ऐसे कम्बल में जो कम से कम फटा हुआ था और कुछ हद तक साफ़ दिखाई देता था। फिर कैम्प के छोर पर चट्टानों के नीचे उसे दफना दिया गया।

इलियास को याद है, उस दिन मदलका ने ही सारा

(पेज 15 पर जारी)

अँधेरी कोठरी में

(पेज 14 से आगे)

क्रियाकर्म किया। कुछ दिन बाद कैम्प से छुटकारा पाने के बाद एक चिट पर मदलका ने कोई चिट्ठी लिखी जिसे लेकर इलियास शहर में मदलका के साथियों से मिला और एक दूसरी ज़िन्दगी शुरू हुई।

बड़ी पुरानी बातें हैं। हवालात की अँधेरी कोठरी में बैठा इलियास बीती यादों में डूबा रहा। आज भी मदलका से हुई मुलाकात पर उसे कोई रंज नहीं है...

उधर, ब्यूक्स अपने घायल हाथ को कोट के अन्दर छिपाये घूमता रहा – कमीज़ की आस्तीन पर ख़ून जमकर पपड़ी बन गया था। सिर में बेहद दर्द था और हल्का बुखार भी। दर्द और बेसब्री के साथ वह तमाम मरीज़ों की तरह अपनी बारी आने का इन्तज़ार कर रहा था।

डॉक्टर का यह वेटिंग रूम एक प्राइवेट मकान का बाहर का कमरा था, जिसमें दीवार के सहारे लगी एक बेंच पर कई मरीज़ बैठे थे।

ब्यूक्स ने सोच लिया था कि वह भी डॉक्टर से वैसे ही मिलेगा जैसे कोई भी साधारण मरीज़ मिलता है। ऐसा करने से उस पर किसी तरह का सन्देह नहीं होगा।

आप आधी रात को डाक्टर के यहाँ नहीं पहुँच सकते, यह कहते हुए कि पुलिस ने गोली मार दी है – ब्यूक्स ने सोचा। इसके अलावा इस डाक्टर का ठीक-ठाक पता भी तो नहीं मालूम था। उसे याद था कि एक बार इस डॉक्टर ने उसके संगठन को चन्दा दिया था। उस समय ब्यूक्स अपने एक साथी के इलाज के सिलसिले में आया था। लेकिन यह बहुत पुराना किस्सा है और तब की बात है जब ब्यूक्स के साथी शहर में जगह-जगह घूमकर अपने हमदर्दों से सहायता राशि इकट्ठा कर रहे थे। मिलते भी उन्हीं से थे, जिनके बारे में एक हद तक निश्चिन्तता होती थी। अब, जबकि सारी कार्रवाईयाँ ग़ैरक़ानूनी घोषित कर दी गयी हैं और सारे संगठनों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है, क्या डॉक्टर का वही रुख होगा जो पहले था? ब्यूक्स ने मन ही मन सोचा। फिर भी कुछ न कुछ तो करना होगा। चोट लगने का कोई वाजिब कारण ढूँढ़ना होगा। उसने हाथ हिलाया और दर्द बड़ी तेज़ी से उठा।

बूढ़ा व्यक्ति दीवार के कोने का सहारा लेकर सो गया था, लेकिन उसका मुँह अब भी काँप रहा था।

काफी इन्तज़ार के बाद ब्यूक्स की बारी आयी। "आइये... मिस्टर बेंजामिन," डॉक्टर ने चश्मे के पीछे छिपी निगाहों से देखा – इस तरह जैसे जानना चाहता हो कि उसने सही नाम लिया या नहीं?

"ब्यूक्स... मेरा नाम ब्यूक्स है।"

"अच्छा-अच्छा, ब्यूक्स।" डॉक्टर ने कहा। वह मानता था कि इन दिनों लोग अपने नाम भी वैसे ही बदल रहे हैं जैसे कमीज़ बदलते हैं, "तुम पहले भी एक बार आ चुके हो। उस समय तुम बीमार नहीं थे। क्यों, मैं ठीक कह रहा हूँ ना?" फिर काली नर्स की ओर घूमकर कहा, "इस मरीज़ का कार्ड बनाने की ज़रूरत नहीं है।"

नर्स ने ब्यूक्स के कोट का बटन खोलना शुरू किया। डॉक्टर को एक साथ ईथर और तम्बाकू की गन्ध मिली और उसने कुछ हिचकिचाहट के साथ कहा, "ओफ़्फ़ोह, तुमने तो ख़ुद को घायल कर रखा है।"

नर्स ने कैंची से कमीज की आस्तीन को काट दिया और वह साँप की सूखी खाल की तरह गिर गयी। घाव को देखकर ब्यूक्स घबरा गया और झट से दूसरी तरफ़ देखने लगा।

डॉक्टर उसे देखकर मुस्करा पड़ा। फिर आगे झुककर देखने लगा, "ओह, काफी गहरा घाव है। नर्स, टाँके लगाने पड़ेंगे – तुम इसे साफ़ करो।"

"दरअसल एक... एक एक्सीडेंट..." ब्यूक्स ने सफ़ाई देनी चाहिए, पर डॉक्टर ने उसके मुँह में थर्मामीटर डाल दिया और उसे चुप हो जाना पड़ा। थर्मामीटर के मुँह से बाहर आते ही ब्यूक्स ने कहा, "डॉक्टर, मैं आपसे अकेले में दो मिनट बात करना चाहता हूँ।"

"ठीक है, ठीक है, बात भी कर लेंगे, पर पट्टी तो बँध जाने दो।"

अब बाँह में पट्टी बाँधी जा चुकी थी और नर्स सारे सामान हटाने में लगी थी। डॉक्टर कोने में बने वाश बेसिन में हाथ धो रहा था।

"तुम्हें लगता होगा कि हाथ सुन्न हो गया है," डॉक्टर ने कहा, "लेकिन घबराना नहीं – यह इंजेक्शन की वजह से है। मैं कुछ दवाइयाँ दे रहा हूँ – अगर बुखार महसूस हो तो खा लेना।" फिर नर्स की ओर मुखातिब होकर कहा, "नर्स, क्या हम लोगों को एक-एक कप चाय मिल सकती है?"

नर्स दूसरे कमरे में चली गई और वे दोनों अकेले रह गये। डॉक्टर अपनी सीट पर बैठकर मेज़ पर रखे सामानों, ब्लडप्रेशर नापने की मशीन और नुस्खा लिखने वाले पैड को यूँ ही इधर से उधर हटाकर रखने लगा।

ब्यूक्स ने बताया कि ऐसा लग रहा है जैसे उसके हाथ को काटकर शरीर से अलग कर दिया गया है। "डॉक्टर, क्या आपको हर एक्सीडेंट की रिपोर्ट करनी होती है?" उसने डॉक्टर की दुविधा को भाँपते हुए पूछा।

"सामान्य परिस्थिति में ऐसा करना ही होता है... और करना भी चाहिए।" डॉक्टर ने कहा और सिगरेट का पैकेट ब्यूक्स की तरफ बढ़ा दिया।

"दरअसल... ऐसा हुआ कि..." ब्यूक्स ने कहना चाहा पर डॉक्टर ने उसकी बात बीच में ही काट दी और सिगरेट का कश लेने के बाद बोला, "मिस्टर ब्यूक्स, घाव देखते ही मैं बता सकता हूँ कि यह गोली से लगा घाव है या चाकू से, हालाँकि गोली लगे घाव से मेरा ज़्यादा साबका नहीं पड़ा है। तुम्हारी बाँह के घाव को मैं समझ रहा हूँ... क्या पुलिस की गोली थी?"

ब्यूक्स ने स्वीकार में सिर हिलाया। डॉक्टर ने कहा, "मेरा भी यही अन्दाज़ा था। आजकल मेरे देश में यह सब ख़ूब हो रहा है... बेशक क़ानून कहता है कि ऐसे मामलों की मैं पुलिस में रिपोर्ट करूँ।"

"क्या आप क़ानून का पालन करेंगे?"

डॉक्टर ने एक बार अपनी सिगरेट की ओर देखा, फिर कुछ सोचते हुए आहिस्ता-आहिस्ता बोल पड़ा, "क़ानून बनाने में अगर समाज को भी हिस्सा लेने का मौक़ा दिया गया है तो इसका पालन करना समाज का नैतिक दायित्व हो जाता है, लेकिन अगर क़ानून बिना लोगों की सहमति या हिस्सेदारी के बनाया जाता है तब बात और है।"

कुछ देर चुप रहने के बाद डॉक्टर ने फिर कहा, "तो भी हमारे देश में जो हालात हैं, उन्हें देखते हुए मैं अपने आपसे पूछता हूँ कि क़ानून किसके पक्ष में खड़ा हो रहा है। अगर क़ानून किसी अपराधी, हत्यारे या बलात्कारी को सज़ा देता है तो मुझे मदद करनी चाहिए, लेकिन अगर क़ानून अन्याय के पक्ष में खड़ा होता है और न्याय के लिए लड़ने वालों को दण्ड देता है तो मैं उसका पालन करने के लिए कतई बाध्य नहीं हूँ। असल में उन्होंने ही मुझे ऐसा अवसर दे दिया है कि मैं अपनी भूमिका तय कर लूँ। मिस्टर ब्यूक्स, हमारे देश में आज यही हो रहा है। अन्याय का बोलबाला है और कुछ हिम्मती लोग हैं जो अपनी जान पर खेलकर उसका विरोध कर रहे हैं... काश, मैं भी इसमें कुछ कर पाता।"

उसने ब्यूक्स की तरफ देखा। ऐसा लगता था जैसे कितने दिनों से वह ऐसा भाषण देने को सोच रहा था।

"आओ, हम लोग चाय पी लें... तुम भी सोच रहे होगे कि चाय के चक्कर में बुरे फँसे..."

"ऐसा क्यों?"

"क्योंकि मैं भाषण दे रहा हूँ।"

"नहीं डॉक्टर," ब्यूक्स ने कहा, "मुझे आपकी बातें सुनकर बहुत अच्छा लगा।"

डॉक्टर को अचानक कुछ याद आया और वह उठकर अन्दर गया।

बाहर शाम गहरी होती जा रही थी और आसमान पर बैंगनी रंग फैलता जा रहा था। दूर शहर की निओन बत्तियों की आभा फैली थी और लगता था कि हवाई हमले के बाद शहर फिर जगा हो। बाहर अश्वेतों के लिए बने एक सिनेमाघर की खिड़की के सामने टिकट लेने वालों की लाइन लगी थी। एक शराबी झूमता हुआ जा रहा था। शनिवार की रात मौज-मस्ती करने वालों की रात होती है। थोड़ा और आगे किसी अख़बार का इश्तिहार था: "गुप्त पर्चों के बारे में सिक्योरिटी चीफ़ की रिपोर्ट।"

"मेरी पत्नी अपंगों के लिए कपड़े इकट्ठा करती है – तुम यह कोट ले लो, आराम रहेगा," डॉक्टर ने कहा, "यह थोड़ा साइज़ में बड़ा होगा लेकिन कोई बात नहीं..."

"बहुत... बहुत शुक्रिया," ब्यूक्स ने अपना पुराना कोट उतारकर डॉक्टर का दिया कोट पहन लिया। पुराने कोट की जेब में पड़े सामान को दूसरे कोट में रखने में डॉक्टर ने भी ब्यूक्स की मदद की।

ब्यूक्स अब चलने की तैयारी में था।

"डॉक्टर, अब मैं चलूँ... आपका काफ़ी समय लिया।" ब्यूक्स ने कोट का बटन बन्द करते हुए कहा, "मैं फिर मिलूँगा... आप तो समझ ही रहे होंगे कि..."

"बिल्कुल समझ रहा हूँ," डाक्टर ने कहा, "सिर दर्द होने पर चार-चार घण्टे के अन्तर में दवा ले लेना और... अपना पूरा ख़्याल रखना।"

ब्यूक्स सड़क पर बढ़ता जा रहा था। "मैं तुम्हें अपने सपनों में देखूँगा," डॉक्टर ने मन ही मन में कहा और खिड़की बन्द कर दी।

● अनुवाद: आनन्दस्वरूप वर्मा

('आज की अफ्रीकी कहानियाँ' संकलन से साभार)

भ्रष्टाचार आदिम पूँजी संचय का ही एक रूप है

(पेज 16 से आगे)

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफ.डी.आई.) के रूप में अपने मूल देश या अन्य किसी देश में भी निवेशित हो जाता है। मारीशस के साथ भारत का 'दोहरा कराधान परिहार समझौता' (डबल टैक्सेशन अवायडेंस एग्रीमेण्ट) है। इसका लाभ उठाकर देश से बाहर गया काला धन एफ.डी.आई. के रूप में वापस आ जाता है। भारत में आज जो कुल प्रत्यक्ष विदेशी निवेश है, उसका 40 प्रतिशत मारीशस-रूट से आया है। काला धन यदि देशी-विदेशी बैंकों में पड़ा भी रहता है तो पूँजीपति कर्ज़ लेकर उसे अपने उद्योगों में लगाते हैं। फिर काला धन लगाने का एक रास्ता 'रीयल एस्टेट' में निवेश या सोना ख़रीदना है, जिनका समय के साथ मूल्य बढ़ता रहता है। यानी जीवित सन्तान न पैदा करना तो कम से कम सोने के अण्डे देना!

तात्पर्य यह कि काला धन पैदा होना आदिम पूँजी-संचय का ही एक रूप है। आदिम पूँजी-संचय शुरू से ही क़ानूनी और ग़ैर क़ानूनी, "शरीफ़ाना" और लूटमार वाले – दोनों ही तरीक़ों से होता रहा है। यह पूँजीवाद की बुनियादी कार्यप्रणाली का एक अंग है। काले धन के राजनीतिक अर्थशास्त्र को नहीं समझने के चलते बहुतेरे लोग काला धन और भ्रष्टाचार के ख़िलाफ़ मुहिम चलाने वाले मजमेबाज़ों के लोक-लुभावन नारों के बहकावे में आ जाते हैं और पूँजीवाद से मुक्ति के ऐतिहासिक प्रोजेक्ट को जानने-समझने और उसमें लगने के बजाय इसी बूढ़े ड्रैक्यूला के ख़ून सने जर्जर चोंगे की सफ़ाई और पैबन्दसाज़ी में शामिल हो जाते हैं।

भ्रष्टाचार-मुक्त पूँजीवाद एक कपोलकल्पना है। और यदि ऐसा हो भी तो "सदाचारी" पूँजीवाद भी उतना ही मानवद्रोही और लुटेरा होगा। वैध लूट और अवैध लूट में कोई फ़र्क नहीं।

पूँजीवादी व्यवस्था में यदि न्यायपालिका भी भ्रष्ट हो सकती है, तो जनलोकपाल और उसके विराट स्टाफ़ का नौकरशाहाना ढाँचा पाक-साफ़ बना रहेगा, यह कोई मिट्टी का माधो ही सोच सकता है।

दुनिया भर के पूँजीपतियों और पूँजीवादी राज्यसत्ताओं का जो रिश्ता है, उसे देखते हुए विदेशी बैंकों में जमा काला धन ला पाना मुमकिन नहीं है। यदि वह आ भी जाये तो ऐसा नहीं है कि सरकार उसे जनहित में लगा देगी। वह पूँजीवादी ढंग से ही निवेशित होगा।

देश में पड़ा सारा काला धन भी यदि सफेद बना दिया जाये तो भी वह श्रम-शक्ति को ख़रीदने और निचोड़ने के ही काम आयेगा। और पूँजी-संचय की प्रक्रिया फिर नये सिरे से काले धन का उत्पादन करने लगेगी।

यदि सभी भ्रष्टाचारी नेताओं-अफ़सरों-ठेकेदारों-दलालों को फाँसी दे दी जाये तो पूँजीवादी सामाजिक-आर्थिक संरचना आनन-फ़ानन में उनकी नयी फ़ौज पैदा कर लेगी।

कुछ पूँजीपतियों को भी पूरी व्यवस्था के हक़ में बलि चढ़ा दिया जा सकता है और चढ़ा भी दिया जाता है। इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा। जबतक पूँजीवादी शोषण और तज्जन्य भयंकर सामाजिक असमानता बनी रहेगी, तबतक राजनीतिक ढाँचे में चाहे जो भी सुधार किये जायें, जनता लोकतांत्रिक अधिकारों से वंचित बनी रहेगी।

जबतक उत्पादन के समस्त साधनों पर मुट्ठीभर लोगों का मालिकाना बना रहेगा, तबतक वही लोग समस्त सामाजिक सम्पदा के वास्तविक स्वामी और राजनीतिक तंत्र के कर्ता-धर्ता बने रहेंगे। इतिहास का एजेण्डा पूँजीवाद से मुक्ति का एजेण्डा है, भ्रष्टाचार से मुक्ति का एजेण्डा मात्र एक भ्रमजाल है।

– आलोक रंजन

हर सम्पत्ति-साम्राज्य अपराध की बुनियाद पर खड़ा है।
– फ्रांसीसी लेखक ओनोर द बाल्ज़ाक

डाक पंजीयन: SSP/LW/NP-319/2011-2013
प्रेषित डाकघर: आर.एम.एस. चारबाग, लखनऊ
प्रेषित तिथि: दिनांक 20 प्रत्येक माह

भ्रष्टाचार का राजनीतिक अर्थशास्त्र

भ्रष्टाचार आदिम पूँजी संचय का ही एक रूप है

पिछले दिनों एक के बाद एक, भ्रष्टाचार के जितने बड़े मामले उछलते रहे (और यह सिलसिला अभी जारी है) और जन्तर-मन्तर से रामलीला मैदान तक आन्दोलन और विरोध के जितने ड्रामे हुए, उन्होंने भ्रष्टाचार के विषय को सार्वजनिक विमर्श के केन्द्र में ला दिया। एक सामान्य धारणा आम जनमानस में स्थापित हुई है कि सरकार, संसद और न्यायपालिका के ऊपर कुछ प्रशासकीय अंकुश एवं नियंत्रण की प्रणाली (जैसे जनलोकपाल) बनाकर भ्रष्टाचार पर काफ़ी हद तक अंकुश लगाया जा सकता है। दूसरा, विदेशों में संचित अकूत काले धन को देश लाकर जनजीवन को ख़ुशहाल बनाया जा सकता है। तीसरा, यदि सच्चरित्र लोग चुनकर संसद में जायें और चुनाव ख़र्च पर नज़र रखने का तंत्र हो तो राजनीतिक भ्रष्टाचार समाप्त हो सकता है।

ये तीनों ही धारणाएँ नितान्त भ्रामक हैं और पूँजीवाद तथा पूँजीवादी जनवाद (लोकतंत्र) के असली चरित्र पर पर्दापोशी करने और उसकी मिट्टी में मिल चुकी साख को किसी हद तक बहाल करने की कोशिश करती हैं। पहली दो धारणाएँ बताती हैं कि कुछ प्रशासकीय बदलाव करके और कुछ राजनीतिक क़दम उठाकर भ्रष्टाचार का होलिका-दहन सम्पन्न किया जा सकता है। तीसरी धारणा भ्रष्टाचार के प्रश्न को व्यक्तिगत नैतिकता-शुचिता का प्रश्न बनाकर प्रस्तुत करती है (पाखण्डी नसीहतबाज़ी का सबसे चालू जुमला यह है कि हर व्यक्ति अपने को ठीक कर ले तो पूरी व्यवस्था ठीक हो जायेगी)।

भ्रष्टाचार का प्रश्न महज़ शासन-प्रशासन की प्रणाली में बदलाव का प्रश्न नहीं है (ऐसा होता तो दो-चार मैनेजमेण्ट गुरु इससे निपटने का सबसे सटीक उपाय बता देते)। भ्रष्टाचार का सवाल व्यक्तिगत नैतिकता-शुचिता का सवाल, यानी एक आध्यात्मिक नैतिक प्रश्न भी नहीं है। यह एक समाज-वैज्ञानिक प्रश्न है। यह राजनीतिक अर्थशास्त्र का प्रश्न है। भ्रष्टाचार और काले धन का सवाल पूँजीवाद की बनावट और कार्यप्रणाली के साथ गुँथा-बुना है। अत: ज़रूरी है कि भ्रष्टाचार के राजनीतिक अर्थशास्त्र को जानने-समझने की कोशिश की जाये।

आदिम पूँजी-संचय और मुनाफ़े को लगातार बढ़ाते जाने की प्रक्रिया पूँजीवाद की बुनियादी गतिकी है और भ्रष्टाचार इन दोनों चीज़ों के साथ संश्लिष्ट ढंग से जुड़ा हुआ है। आदिम पूँजी संचय का मतलब है कि पूँजीवाद के जन्मकाल से "स्टॉक" यानी कि परिसम्पत्तियाँ और "फ्लोज़" यानी कि आमदनी लगातार छोटे उत्पादकों की क़ीमत पर पूँजीपतियों के पास संकेन्द्रित होती चली जाती है। पूँजीवाद जब अस्तित्व में आया तो उपनिवेशों की अकूत लूट और छोटे उत्पादकों को उजाड़कर उसने पूँजी-संचय किया। आदिम पूँजी-संचय की यह प्रक्रिया आगे भी लगातार जारी रही। छोटे उत्पादकों का सम्पत्तिहरण, पूँजीवादी राजकीय स्वामित्व के उपक्रमों को औने-पौने दामों पर हथियाने तथा खनिज निकालने एवं कारख़ाने लगाने के लिए जंगलों-पहाड़ों को कब्ज़ियाने के रूप में यह प्रक्रिया आज भी लगातार जारी है। उजड़े हुए सभी छोटे उत्पादकों का एक अत्यन्त छोटा हिस्सा ही आज निजी या सार्वजनिक संगठित उद्योगों में मज़दूर के रूप में खप पाता है। मज़दूरों को ज्यादा से ज्यादा निचोड़ने के लिए ये संगठित उद्योग भी ज़्यादा काम ठेके पर 'इनफ़ॉर्मल सेक्टर' से ही कराते हैं जहाँ 95 प्रतिशत मज़दूर ठेका, दिहाड़ी, कैजुअल या पीस रेट पर काम करते हैं। इसके बाद पार्ट टाइम काम पाकर बमुश्किल तमाम जी पाने वाले तीस करोड़ बेरोज़गार हैं। यही उस "रोज़गारविहीन विकास" की अन्तर्कथा है, जिसमें सकल घरेलू उत्पाद के ऊँचे विकास के साथ-साथ देश में निरपेक्ष ग़रीबी, भी बढ़ती चली गयी है। देश की ऊपर की दस फ़ीसदी आबादी के पास कुल परिसम्पत्ति का 85 फ़ीसदी इकट्ठा हो गया है, जबकि नीचे की 60 फ़ीसदी आबादी के पास मात्र दो प्रतिशत है। 70 फ़ीसदी लोग 20 रुपये रोज़ से कम पर जीते हैं। कुपोषण और भुखमरी के मामले में भारत दुनिया के देशों में सबसे नीचे के पायदान वाले देशों के बीच खड़ा है। बहरहाल, अब मूल विषय पर वापस लौटते हैं।

पूँजीवादी आर्थिक विकास का मतलब ही है पूँजी-संचय और 'प्रॉफिट मैक्सिमाइज़ेशन' की अनवरत जारी प्रक्रिया, जो एक ओर थोड़े से हाथों में पूँजी के संकेन्द्रण और दूसरी ओर ज़्यादा से ज़्यादा निचोड़े जाने वाले उजरती गुलामों की भीड़ को जन्म देती है। पूँजी-संचय और मुनाफ़े को लगातार ज़्यादा से ज़्यादा बढ़ाते जाने की प्रवृत्ति एक ऐसा माहौल बनाती है जिसमें क़ानूनी और ग़ैरक़ानूनी शोषण के बीच की, शोषण और लूट के बीच की रेखाएँ धीरे-धीरे मिट-सी जाती हैं। आदिम पूँजी संचय शुरू से ही इसी तरह होता रहा है। याद करें, उपनिवेशों की लूट और दासों का व्यापार क़ानूनी दायरे से बाहर बर्बर लूटमार जैसी ही चीज़ें थीं।

जब भारत को राजनीतिक स्वतंत्रता मिली तो पूँजीपति वर्ग की राजनीतिक सत्ता ने बुनियादी और ढाँचागत उद्योगों में लगने वाली विपुल पूँजी का अम्बार जुटाने के लिए "समाजवाद" के नाम पर जनता की नस-नस से पैसा निचोड़कर पब्लिक सेक्टर का विराट तंत्र विकसित किया जिसका पूरा लाभ प्राइवेट सेक्टर के उद्यमों को ही मिला। यानी "समाजवादी" मुखौटे वाले राजकीय पूँजीवाद ने जनता को "वैध" ढंग से ठगकर और निचोड़कर पूँजीवादी विकास के लिए आदिम पूँजी संचय किया। साथ ही पब्लिक सेक्टर ने नेताशाही-नौकरशाही को भी कमीशनख़ोरी-घूसख़ोरी का काफी मौक़ा दिया। इस पूरे दौर में क़ानूनी ढंग से भी सार्वजनिक परिसम्पत्तियों और जनता की कमाई से (सस्ती दरों पर खनिज कच्चा माल, बिजली, परिवहन, सुविधा आदि मुहैया कराकर) पूँजीपतियों को लाभ कमाने का अवसर दिया गया और ग़ैरक़ानूनी ढंग से भी। नेताओं और नौकरशाहों के पास कमीशन और घूस से काला धन और 'अनअकाउण्टेड मनी' का अम्बार संचित हुआ।

बीस-पच्चीस वर्षों पहले जब उदारीकरण-निजीकरण का दौर शुरू हुआ तो प्राय: यह कहा जाता था कि "लाइसेंस-कोटा-परमिट राज" ख़त्म होने से भ्रष्टाचार और काला धन पर रोक लगेगी। पर हुआ ठीक उल्टा। घोटालों की संख्या और उनमें संलिप्त धनराशि कई-कई गुना अधिक हो गयी। सार्वजनिक उपक्रमों और सामाजिक प्राकृतिक सम्पदा (खनिज निकालने के लिए वनों-पहाड़ों की ज़मीन, नदियों का पानी, स्पेक्ट्रम लाइसेंस आदि) को कौड़ियों के माल प्रतिस्पर्द्धी पूँजीपतियों को सौंपते हुए नेताओं-नौकरशाहों ने ख़ूब कमाई की। आम जनता की जो बचत सार्वजनिक बैंकों में जमा होती थी, उसे उधार के रूप में लेकर पूँजी निवेश करके पूँजीपति कई गुना मुनाफ़ा कमाने के बाद मूल धन को भी हड़पने लगे। सालाना खरबों रुपये के इस ग़बन को बैंक 'नॉन परफ़ॉर्मिंग एसेट्स' के खाते में दर्ज कर लेते हैं। काला धन पैदा होने का एक और महत्वपूर्ण स्रोत टैक्स चोरी है। इसके अतिरिक्त, अनौपचारिक क्षेत्र की बहुसंख्यक मज़दूर आबादी को जितनी न्यूनतम मज़दूरी देनी होती है और उनकी सामाजिक सुरक्षा पर जो ख़र्च करना होता है, पूँजीपति वह भी नहीं करते और इस तरह नौकरशाही-नेताशाही को घूस देकर, खुद भी ग़ैरक़ानूनी मुनाफ़े का अम्बार इकट्ठा करते हैं।

'ग्लोबल फाइनेंशियल इण्टिग्रिटी' के वरिष्ठ अर्थशास्त्री देव कर के अध्ययन के अनुसार 1948 से 2008 के बीच के साठ वर्षों के बीच 213 अरब डालर अवैध धन देश से बाहर जाता कहाँ है? इस धन का अनेक रास्तों से निवेश होता है और यह पूँजी में तब्दील हो जाता है। यानी कि काले धन का पैदा होना आदिम पूँजी-संचय का ही एक रूप है। काले धन का स्वामी घर में धन गाड़कर नहीं रखता है। जैसा कि मार्क्स ने कहा था, "कंजूस व्यक्ति ऐसा पूँजीपति होता है जो पागल हो गया होता है, जबकि पूँजीपति एक तर्कशील कंजूस होता है" (पूँजी; खण्ड-1, अध्याय-4)। 'पूँजी' के उसी अध्याय में मार्क्स लिखते हैं कि मुद्रा और माल के रूप में मौजूद पूँजी बेशी मूल्य पैदा करते हुए स्वयं अपने मूल्य का विस्तार करती जाती है। "चूँकि वह मूल्य है, इसलिए उसमें खुद अपने में मूल्य जोड़ लेने का अलौकिक गुण पैदा हो गया है। यह जीवित सन्तान पैदा करती है या यूँ कहिये कि कम से कम सोने के अण्डे तो देती ही है।"

काला धन सैकड़ों तिकड़मों से उद्योगों में लगाया जाता है, शेयर बाज़ार में लगता है, सिनेमा-मनोरंजन और विज्ञापन उद्योग में लगता है, और देशों की सीमा पार कर आवारा पूँजी के गिरोह में शामिल होकर तुरन्त लाभ की तलाश में पूरी पृथ्वी पर विचरण करता है। पूँजी की आवाजाही के लिए खुली छूट का लाभ उठाकर बाहर गया काला धन

(पेज 15 पर जारी)

पूँजी का सूत्रवाक्य : 'मुनाफ़े के लिए कुछ भी करेगा!'

'पूँजी' खण्ड-एक के 31 वें अध्याय के फुटनोट में कार्ल मार्क्स ने टी.जे. डनिंग की पुस्तक 'ट्रेड-यूनियन्स ऐण्ड स्ट्राइक्स' से एक दिलचस्प उद्धरण दिया है, उसे हम यहाँ ज्यों का त्यों दे रहे हैं:

"क्वार्टरली रिव्यूअर ने कहा है कि पूँजी अशान्ति और संघर्ष से दूर भागती है और बहुत भीरु होती है। यह बात बिल्कुल ठीक है, परन्तु केवल इतना ही कहना प्रश्न को बहुत अपूर्ण रूप में प्रस्तुत करना है। जिस प्रकार पहले कहा जाता था कि प्रकृति शून्य से घृणा करती है, उसी प्रकार पूँजी इसे बहुत नापसन्द करती है कि मुनाफ़ा न हो या बहुत कम हो। पर्याप्त मुनाफ़ा हो तो पूँजी बहुत साहस दिखाती है। 10 प्रतिशत मुनाफ़ा मिले तो पूँजी को किसी भी स्थान पर लगाया जा सकता है। 20 प्रतिशत का मुनाफ़ा निश्चित हो, तो पूँजी में उत्सुकता दिखाई पड़ने लगती है। 50 प्रतिशत की आशा हो, तो पूँजी स्पष्ट ही दिलेर बन जाती है। 100 प्रतिशत का मुनाफ़ा निश्चित हो, तो वह मानवता के सभी नियमों को पैरों तले रौंदने को तैयार हो जायेगी। और यदि 300 प्रतिशत मुनाफ़े की आशा हो, तो ऐसा कोई भी अपराध नहीं है, जिसको करने में पूँजी को संकोच होगा और कोई भी ख़तरा ऐसा नहीं हे, जिसका सामना करने को वह तैयार नहीं होगी। यहाँ तक कि अगर पूँजी के मालिक के फाँसी पर लटका दिये जाने का ख़तरा हो, तो भी वह नहीं हिचकिचायेगी। यदि अशान्ति और संघर्ष से मुनाफ़ा होता दिखायी देगा, तो वह इन दोनों चीज़ों को जी खोलकर प्रोत्साहन देगी। यहाँ जो कुछ कहा गया है, चोरी का व्यापार और दासों का व्यापार इसको पूरी तरह प्रमाणित करते हैं।"

रक्त और गन्द में लिथड़ी पूँजी

'पूँजी' खण्ड-1, (31वाँ अध्याय) में मार्क्स ने लिखा है: "मैन्यूफैक्चर के काल में पूँजीवादी उत्पादन के विकास के साथ-साथ यूरोप का लोकमत लज्जा और विवेक के अन्तिम अवशेषों को भी खो बैठा था। सभी राष्ट्र हर ऐसे अनाचार की, जिससे पूँजीवादी संचय का काम निकलता था, बढ़-बढ़कर डींग मार रहे थे।" इसके उदाहरण के तौर पर मार्क्स ने "सुप्रतिष्ठित लोगों" द्वारा दासों के व्यापार के प्रशस्तिगान की चर्चा की है (उपनिवेशों की बर्बर लूट की चर्चा तो अन्यत्र कई जगह उन्होंने की है।) पूँजीवाद द्वारा ज़्यादा से ज़्यादा बेशी मूल्य निचोड़ने के लिए बच्चों और स्त्रियों द्वारा गुलामों जैसी नारकीय स्थिति में काम लेने की उन्होंने चर्चा की है। उपरोक्त अध्याय के अन्त में मार्क्स लिखते है: **"यदि, औज़िए के कथनानुसार मुद्रा 'अपने गाल पर एक जन्मजात रक्त का धब्बा लिये हुए संसार में आती है', तो हम कहेंगे कि जब पूँजी संसार में आती है, तब उसके सिर से पैर तक प्रत्येक छिद्र से रक्त और गन्दगी टपकती रहती है।"**

"पूँजी मृत श्रम है जो ख़ून पीने वाली पिशाचिनी की तरह जीवित श्रम को चूसकर ज़िन्दा रहती है, और जितना अधिक श्रम को चूसती है, उतना अधिक जीती है। जिस समय के दौरान मज़दूर काम करता है, वह समय होता है जब पूँजीपति उस श्रमशक्ति का उपयोग करता है, जिसे वह मज़दूर से खरीदता है।" **– कार्ल मार्क्स**

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधीपुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006